निवेदिता
निवेदिता

ओ३म्
ओ३म्
१.२

ओ३म्

प्यारा ऋषि

ओउम् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

प्यारा ऋषि

लेखक
महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज

प्रकाशक-
रामलाल कपूर ट्रस्ट
ग्राम रेवली, पो॰ शाहपुरतुर्क
जि॰ सोनीपत- १३१००१
(हरियाणा)

अन्य पुस्तक-प्राप्ति-स्थान-
-रामलाल कपूर एण्ड संस,
पेपर मर्चेन्ट्स, २५९६,
नई सड़क, दिल्ली।
-विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द,
नई सड़क, दिल्ली

अष्टम वार- १०००
कार्त्तिक, सं॰ २०५९,
नवम्बर, सन् २००२
मूल्य- १०.००

मुद्रक-
कमाल प्रिंटिंग प्रेस
नई सड़क, दिल्ली

❀ ओ३म् ❀
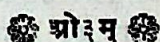
प्रथम संस्करण की भूमिका
निवेदन

कितनी सुन्दर एवं शिक्षाप्रद घटनाएं महाराज के जीवन में हैं! उनका तो एक-एक बोल मोतियों के तोल तुलने के योग्य था, परन्तु उनके जीवन-काल में किसी का इस ओर ध्यान ही नहीं गया। यह तो उनके निर्वाण-पद प्राप्त करने के पश्चात् प्रयत्न आरम्भ हुए कि उन घटनाओं का संग्रह करना चाहिये। और यह प्रसन्नता की बात है कि इसके लिए भरसक प्रयत्न हुआ, और फिर सफलता भी मिली।

स्वामी दयानन्दजी के जीवन-चरित्र का अध्ययन करके बार-बार यह विचार मन में हलचल उत्पन्न कर देता है कि कितना अत्याचार—कितना अन्याय—कितना दुर्व्यवहार महाराज के साथ हुआ!! बीस-इक्कीस से अधिक बार उन्हें मार डालने का प्रयत्न किया गया। कभी विष देकर—कभी नदी में फेंककर—कभी तलवार के वार से—कभी जीवित सांप उन पर फेंक कर—नाना प्रकार से उनके जीवन को समाप्त करने की चेष्टायें तथा प्रयत्न किए गए। अपमान की घटनाओं की तो कोई गणना ही नहीं, क़ैद तक कराने का दुस्साहस किया गया। लाञ्छन लगाने, गालियां देने, और हर प्रकार से उन्हें हतोत्साह करने की लीलाएं की गईं। परन्तु कौनसा हृदय लेकर दयानन्द आया था? साधारण ही नहीं, असाधारण मनुष्य भी इतने कष्ट और दुःख सहकर, इतना अपमान सहने को

महाराज उस नये विचार को लेकर उस चोटी से उतर आये। और उत्तराखण्ड से नीचे आकर चार वर्ष और नर्वदा के स्रोत और तट पर रहते हुए योगाभ्यास में तत्पर रहे। इस प्रकार १४ वर्ष आत्म-दर्शन में बिता दिये। और फिर संवत् १६१७ में मथुरा पहुंचकर श्री स्वामी विरजानन्दजी से विशेष ज्ञान-प्राप्ति की, और तब संवत् १६२० में भयङ्कर कार्यक्षेत्र में आ खड़े हुए। कितना अज्ञान-तिमिर छा चुका है? लोग सब कुछ भूल गये हैं, जैसे प्रलय की अवस्था हो। अपने आपको भी भूल चुके हैं, एक को दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रहा अलग-अलग पड़े कष्ट-क्लेश की वेदना सह रहे हैं। ईश्वर भी भूल गया है, ईश्वर का स्थान स्थूल-पूजा ने ले लिया है।

दयानन्द ने तिमिर को देखा, अपनी शक्ति को तोला। सारा ही संसार उलटे मार्ग पर चल पड़ा है। जब वेद का सूर्य ही नहीं रहा, तो वेद-विहीन रात्रि में लोग भटक न जाते, तो और क्या होता? महाराज ने समझ लिया कि घोर आंदोलन करना होगा। स्वार्थियों के स्वार्थों पर कुठार चलाना होगा। जब स्वार्थियों के स्वार्थों पर आघात होगा, तो अब करना ही है। बस, यहीं से संवत् १६२० से दयानन्द युद्ध-क्षेत्र में कूद पड़ा। योग के प्रशान्त सरोवर में रहकर शांत-चित्त दयानन्द अब कोलाहल झगड़ों-बखेड़ों और सङ्घर्षों में पदार्पण करने लगा है, और करने भी अकेले ही लगा है। हां, साथ हैं एक ईश्वर और दूसरे वेद। और आज इन दोनों को संसार भूल गया है। प्रभु-शक्ति परमात्मा-पूजा के स्थान पर पार्थिव पूजा चल पड़ी है। धर्म के नेता गद्दियों को संभाले अच्छे-खासे दुकानदार और ठेकेदार बन गये हैं। यह लोग अपनी दुकानों को देखेंगे या ईश्वर की आवाज सुनेंगे? और वेद की बात कौन सुनेगा? बात सुनना तो एक ओर रहा, भारत के लोग तो यह समझ बैठे थे कि अब वेद संसार में रहे ही नहीं, उन्हें तो "शंखासुर" ले गया। स्वामीजी के

जीवन में इस सम्बन्ध में एक घटना लिखी है —

एक दिन लक्ष्मण शास्त्री स्वामीजी के निकट जाकर शास्त्रार्थ करने लगे। शास्त्रार्थ का विषय था मूर्ति-पूजन। स्वामीजी ने शास्त्रीजी को कहा कि अपने पक्ष के पोषण में आप कोई वेद का प्रमाण उपस्थित कीजिये। शास्त्री महाशय ने कहा कि वेद का प्रमाण कहां से दूं ? वेद तो शंखासुर ने हरण कर लिये हैं। स्वामीजी ने तत्काल वेद हाथ में उठाकर कहा—"पण्डितजी ! आपके आलस्य और प्रमाद-रूप शंखासुर का वध करके यह वेद मैंने जर्मनी से मंगाये हैं। लीजिये, इनमें से खोजकर कोई प्रमाण निकालिये।" उस समय सारी सभा हास्य-रस में लोट-पोट हो गई। पण्डितजी ने भी मौन साधना ही अच्छा समझा। जहां लोग यह विश्वास किये बैठे हों कि वेद को तो शंखासुर ने हरण कर लिया है, वहां के लोगों की बुद्धि सन्मार्ग पर आ सकेगी, यह सन्देह हो जाता है। परन्तु स्वामीजी ने इन सब कठिनाइयों को भली प्रकार अनुभव करके धर्म-युद्ध प्रारम्भ कर दिया। अखण्डित ब्रह्मचर्य से उनका तेजोमय मुखमण्डल, उनका विशाल व बलवान् शरीर, उनकी सुन्दर काया सबसे पहले लोगों पर प्रभाव डाल देती थी। जिस पर उनका ओजस्वी भाषण, धारा प्रवाह संस्कृत का बोलना, वेद तथा दूसरे शास्त्रों के प्रमाणों की झड़ी तो धुरन्धर पण्डितों को भी अवाक् कर देती थी। वेद के मन्त्रों का उच्चारण और शास्त्रों की बातें सुनकर बड़े-बड़े विद्वान् मुंह में अंगुली दबाये खड़े रह जाते थे। यह कहां से आ गया है ? किस आकाश से उतर आया है ? इसकी विद्या, ज्ञान तथा युक्तियों के सूर्य के सामने चमगादड़ कैसे ठहर सकेंगे ? जब लोगों ने देखा कि दयानन्द द्वारा बतलाये हुए वेद के सत्य के सामने कोई नहीं ठहर सकता। तब शास्त्र के स्थान पर शस्त्र प्रयोग में लाया जाने लगा। मन्त्रों और श्लोकों की जगह गालियां मिलने लगीं। शिष्टाचार के

स्थान पर अपमान होने लगा। पान में, दुग्ध में, मिठाई में बार-बार विष दिया जाने लगा। गुण्डे लाठियां और तलवारें लिये महाराज का वध करने का मौका ताड़ने लगे। दम्भ अन्याय और पापाचार से काम लेकर स्वामी जी को नीचा दिखलाने के षडयन्त्र रचे जाने लगे। विरोध की नदी किनारे काटकर उमड़ पड़ी थी, छोटे-बड़े सब उत्तेजित हो उठे थे। सब यही कहते थे—एक मूर्तिपूजा का खण्डन न करो, और जो चाहो सो कहो। परन्तु वेद का भक्त यह कैसे सहन करता ? प्रभु का प्यार यह कैसे आज्ञा देता कि उसके भगवान् की पूजा के नाम पर ऐसे खेल खेले जायं ? जब विरोध भी दयानन्द का उत्साह भङ्ग न कर सका, सत्य से इधर-उधर करने में असमर्थ रहा, तब प्रलोभन दिये जाने लगे। लाखों की जागीरों की गद्दियां मिलने लगीं, परन्तु निष्काम दयानन्द को कोई भी प्रलोभन फंसा न सका। वह सिंह की तरह सत्य की गर्जना करता चला गया। न दिन को रुका न रात को, न धमकियां रोक सकीं न प्रलोभन।

क्या पड़ी थी महाराज को कि वह अपना योग-आनन्द छोड़कर इस टंटे में आ पड़ें ? ऐसी ही बात एक बार एक वयोवृद्ध महात्मा ने स्वामीजी से कही कि—'यदि आप पहले ही के निवृतिमार्ग पर स्थित रहते, और परोपकार के झगड़ों में न पड़ते, तो इसी जन्म में आपको मुक्ति हो जाती'। महाराज ने इसके उत्तर में कहा था कि — मुझे अपनी मुक्ति का ध्यान नहीं, अपितु इन लाखों-करोड़ों मनुष्यों की मुक्ति की चिन्ता मेरे चित्त को व्याकुल कर रही है। भले ही कई जन्म क्यों न धारण करने पड़ें, दुखों के त्रास से दीन-दशा से और दुर्बल अवस्था से परमपिता के पुत्रों को मुक्ति दिलाकर मैं आप ही मुक्त हो जाऊंगा।' महाराज को अपनी मुक्ति की नहीं, अपितु दूसरों की मुक्ति की चिन्ता सताया करती थी। ऐसे ही देवताओं के लिए किसी ने कहा है—

अपनी फिकर न कुछ करें, प्रभु प्रेम के दास।
सूई नंगी खुद रहे, और सबका सिये लिबास ।।

दयानन्द के घोर तप से, उनके निरन्तर प्रचार से, अन्त में सत्य के प्रेमियों के हृदय पसीज गये। और स्थान-स्थान पर आर्यसमाज स्थापित होने लगीं।

महाराज का जीवन पढ़कर सहसा यह कहना पड़ता है कि कितनी ही शताब्दियों के पश्चात् अभागे भारत के भाग्य-भास्कर का उदय हुआ था। परन्तु शोक! ब्रह्महत्यारों ने इस सूर्य को अधिक काल तक अपना प्रकाश फैलाने न दिया। महाराज ने सन् १८७३ तक वस्त्र नहीं पहने। ग्रीष्म के भीषण उत्ताप से तप्त तवे की तरह संतप्त रेत पर उन्होंने कई दोपहरें काटीं। तुषारराशि में परिणत पर्वतों के पाषाणों और गंगा-पुलिन पर, पौष-माघ की रातों के पाले नग्न और निराहार सहन किये। उनका बलवान् और अभ्यासी शरीर सब द्वन्द्वों को सहन करता था। परन्तु बार-बार विष दिये जाने से आखिर वह रोगग्रस्त हो गया, और सन् १८७३ से उन्हें वस्त्रों का भी सहारा लेना पड़ा। महाराज ने एक बार बड़े दुःख से यह कहा—"यदि विष दे-दे कर मेरा रक्त बिगाड़ न दिया जाता, तो सौ वर्ष से अधिक आयु तक मेरा शरीर नीरोग रहकर कार्य करता रहता। परन्तु अब तो मेरी आयु आधी से भी बहुत कम रह गई है।" हा, अभागे भारत ! ऐसा रत्न तू फिर कभी पा सकेगा ?

श्री रामचरितमानस में तुलसीदास ने कहा है—

साधु चरित सुभ सरिस कपासू, निरस बिसद गुनमय फल जासू।
जो सहि दुःख परछिद्र दुरावा, वन्दनीय जेहि जग जस पावा ।।

साधु-सन्तों का शुभचरित्र कपास की भांति रस-सहित किन्तु स्वच्छ उज्ज्वल और गुणमय फलवाला होता है। जिस प्रकार कपास औटाई धुनाई कताई और बुनाई आदि क्रियाओं द्वारा नाना प्रकार

के दुःखों को सहन करते हुए भी दूसरे प्राणियों के लिए वस्त्रादि बनकर उनकी त्रुटियों को दूर करता, तथा मर्यादा और सुख का कारण बनता है, इसी प्रकार साधुओं के समस्त कर्म कामना और स्वार्थ से रहित होते हैं। वे अपने आपको कष्ट दे-दे कर भी परहित के लिए लोक-परलोक बनाने में तत्पर रहते हैं। और ऐसे लोग ही हीं वन्दनीय होते हैं, और यश पाते हैं। यह सारे गुण महाराज दयानन्द के जीवन में पाये जाते हैं।

महाराज के जीवन की बातें पढ़-पढ़ कर नैन थकते नहीं, मन उकताता नहीं। जी चाहता है कि प्रभु के इस प्यारे की बातें समाप्त ही न हों। जिन लोगों को महाराज के मुखारविन्द से बातें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह अब जब-कभी उस मधुर-वाणी का वर्णन करते हैं, तो गद्-गद् हो जाते हैं। उनके नेत्र जल-पूर्ण हो आते हैं। कितनी मिठास थी उनमें ! इतने संघर्ष, इतने विरोध, इतने घातक आक्रमणों के पश्चात् भी महाराज का हृदय द्वेष से बालकों की भांति कोरा था। वे सबके हित की बात कहते थे। उनमें स्वार्थ की मात्रा लेश-मात्र भी न होती थी। उनके भाषणों को सुनकर सुननेवालों में नये प्राण आ जाते थे, उत्साह और उल्लास बढ़ जाता था। हृदय वैदिक विचारों की तरङ्गों से तरङ्गित हो उठता था। और वह ऐसा अनुभव करते थे, जैसे किसी ने सोये हुए को जगा दिया हो। महाराज की ऐसी सब बातें हृदयाङ्कित करने योग्य हैं। परन्तु इन सबको पढ़ने का सौभाग्य थोड़े ही लोगों को मिलता है। मैंने एक बार नहीं, महाराज का जीवन कई बार पढ़ा है। पढ़ते-पढ़ते कई बार अश्रु-धारा बह निकली है। और कितनी कितनी देर तक अभागे भारत के भाग्य पर विचार करता रहा हूं। और कितनी ही बार महाराज के हास्य-रस को देखकर खिल-खिला कर हंस पड़ा हूं। इस समय तक जितने भी जीवन-चरित्र प्रकाशित

हो चुके हैं, प्राय: वे सब मेरी दृष्टि से गुजरे हैं। सबसे पूर्व पं० लेखरामजी और महात्मा मुन्शीरामजी द्वारा रचित जीवन-चरित मैंने पढ़ा। फिर महता राधाकृष्णजी का लिखा हुआ, तत्पश्चात् श्री स्वामी सत्यानन्दजी की मधुर और सरस लेखनी से निकला हुआ महाराज का चरित्र पढ़ा। इसी प्रकार बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय तथा पं० घासीरामजी की ओर से महर्षि दयानन्द का जो जीवन-चरित्र 'आर्य्यसाहित्य मण्डल' अजमेर ने प्रकाशित किया है, उसको भी आद्योपांत पढ़ा। इन्हें पढ़कर यह विचार उत्पन्न हुआ कि महाराज के जीवन की कुछ विशेष घटनाओं को चुनकर एक पृथक् पुस्तक में प्रकाशित करना चाहिये। जब मैं 'आर्य्य गजट' का सम्पादक था, तभी मैंने एक स्तम्भ 'प्यारे ऋषि की प्यारी बातें' शीर्षक से खोला था। और महाराज के जीवन की घटनाएं उसमें प्रकाशित करनी आरम्भ की थीं। इस सिलसिले को जनता ने बहुत पसन्द किया था। यह प्रसन्नता की बात है कि श्री पंडित दीवानचन्दजी एम०ए० सम्पादक 'आर्य गजट' ने उस सिलसिले को रखा हुआ है।

जब मैं 'हैंदराबाद आर्य-सत्याग्रह' के सम्बन्ध में गुलबर्गा जेल में डाल दिया गया, और इसलिये डाला गया कि हम स्वामी दयानन्द की जय और वैदिकधर्म की जय का 'नारा' लगाते हैं, तो जेल में रहते हुए यह विचार आया कि महाराज के जीवन-चरित्रों में से, उनके जीवन की सुन्दर-वाटिका में से कुछ फूल चुन लेने चाहिएं, और उन्हें प्रभु-प्रेमियों को भेंट कर देना चाहिए। कुछ पत्र-पुष्प तो पहले ही चुने रखे थे। अब विशेष जेल-निवास के दिनों में चुन लिये गए, और फलत: आपके सामने रखे जा रहे हैं। पूर्ण श्रद्धा तथा प्रेम से इनकी सुगन्धि लीजिये। और देखिए कि यह वह फूल हैं, जो न कभी मुर्झाते हैं, न सूखते है, न इनका रङ्ग बिगड़ता है, और न इनकी कीमत घटती है। मैंने यह प्रयत्न किया है कि जहां तक हो सके,

महाराज के जीवन की घटनाएं सिलसिले वार ही लिखा जायं। यदि असावधानी से कोई घटना आगे-पीछे हो गई हो, तो उसके लिए क्षमा चाहता हूं। यह सारा संग्रह श्री पण्डित लेखराम जी, श्री स्वामी सत्यानन्दजी, और बाबू देवेन्द्रनाथजी के बनाए हुए महाराज के जीवन-चरित्रों में से किया गया है। अतएव मैं इन सब महानुभावों का आभारी हूं॥

गुलवर्गा सैण्ट्रल जेल
१६ जून १६३६

सेवक—
खुशहालचन्द

(वर्तमान आनन्द स्वामीजी महाराज)

तृतीय संस्करण के प्रकाशन का अधिकार श्री स्वामीजी महाराज ने ट्रस्ट को दिया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

मन्त्री—रामलाल कपूर ट्रस्ट

विषय-सूची

★ ओ३म् ★

प्यारा ऋषि

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।। यजुः ३६।३।।

प्रश्न और उत्तर

कः पद्मिनीनां वद तिग्मदीधिति-
र्धर्मः परा का कविवाचि कः स्थितः ।
का कण्ठभूषा न यमाद्बिभेति कः,
स्वामी-दयानन्द-सरस्वती यमी ॥

१. सूर्य पद्मिनियों का कौन है ? — स्वामी
२. परम धर्म कौन-सा है ? — दया
३. कवि की वाणी में कौन स्थित है ? — आनन्द
४. कण्ठ का भूषण क्या है ? — सरस्वती
५. यम से कौन नहीं डरता ? — यमी

पहला चमत्कार

उस समय आयु थी १४ वर्ष की। माता-पिता का इकलौता पुत्र, लाड़-प्यार से पला हुआ, धर्म-पूजा-पाठ वेद-अध्ययन में संलग्न रहता था। शिवरात्रि का व्रत ले रखा था। शिव-मन्दिर में रात्रि के समय जब पूजा करते-करते लोग थक गये, तो यह चौदह वर्ष का बालक जाग रहा था। उसकी आंखों में नींद न थी। वे भगवान् शंकर के दर्शनों के लिए खुली थीं, उसी का मार्ग जोह रही थीं। किन्तु यह क्या ? क्या यही महादेव हैं, क्या यही शंकर हैं, क्या यही शिव हैं? पिताजी ने तो उनके और ही प्रकार के गुण वर्णन किये थे।

बालक ने पिताजी को जगाया, और शिवमूर्ति तथा चूहों की ओर संकेत करते हुए पूछा—'यह क्या है ? जिस महादेव की प्रशान्त-पवित्र मूर्ति की कथा, जिस महादेव के प्रचण्ड पाशुपतास्त्र की कथा, और जिस महादेव की विशाल वृषारोहण की कथा गत दिवस व्रत के वृत्तान्त में सुनी थी, क्या वह महादेव वास्तव में यही हैं ?'

इस प्रश्न को सुनकर पिता बोले—'पुत्र ! इस कलिकाल में महादेव के साक्षात् दर्शन नहीं होते। यह तो केवल देवता की मूर्ति है, साक्षात् देवता नहीं।

बालक इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हो सका, और वह मन्दिर से निराश होकर घर लौट आया। वहां आकर भोजन किया, और सो रहा।

प्रातःकाल पिता मन्दिर से लौटे, और बालक के व्रत-भंग की बात सुनकर क्रोध से बोले—'तुमने बहुत बुरा काम किया।'

पुत्र ने उत्तर में कहा—'पिताजी ! जब ग्रन्थ-कथित महादेव मन्दिर में थे ही नहीं, तो मैं एक कल्पित बात के लिए व्रतोपवास का कष्ट क्यों सहन करता ?'

महाराज दयानन्द के जीवन की यह पहली उल्लेखनीय घटना है।

दूसरा चमत्कार

जब महाराज सोलहवें वर्ष में थे, तब की यह घटना है। १६ वर्ष का बालक अपनी प्यारी बहन को मृत्यु का ग्रास बनते देखकर कहता है (द्र०—ऋ० द० का आत्म-चरित)—

"मेरे घर में आने के दो ही घंटे के भीतर मेरी बहन मृत्यु का ग्रास बन गई। उस बहन के वियोग का शोक ही मेरे जीवन का प्रथम शोक था। उस शोकप्रद घटना के समय जब आत्मीय मेरे चारों ओर खड़े हुए विलाप कर रहे थे, मैं पाषाण-मूर्ति के समान अविचलित रहकर चिन्ता के स्रोत में डूबा हुआ था। मनुष्य-जीवन की क्षण-भंगुरता की बात सोचकर अपने मन में कह रहा था कि जब पृथ्वी पर सभी को इस प्रकार मरना है,तो मैं भी एक दिन मरूंगा। किन्तु कोई ऐसा स्थान भी है,जहां मृत्यु की यन्त्रणा से रक्षा हो सके, और मुक्ति का उपाय प्राप्त हो। तब मैंने वहीं खड़े-खड़े यह संकल्प किया कि चाहे जो भी हो, इस महाज्ञान को प्राप्त करूंगा॥"

इस घटना के तीन वर्ष पश्चात् महाराज के चाचा का देहान्त हो गया। इससे वैराग्य की और भी तीव्र तरङ्ग उठी, और उन्होंने सोचा—'ससार की सारी वस्तुएं अस्थायी और नश्वर हैं, तब ऐसी वस्तु कौनसी है, जिसके लिए संसार में रहकर सांसारिक लोगों के समान जीवन-यापन करूं? तभी मैंने यह निश्चय कर लिया कि यह संसार असार है। इसमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं,जिसके लिए जीने की इच्छा की जाय।"

इस दुःखसागर में छूटने का उपाय महाराज को योगाभ्यास बतलाया गया। और महाराज ने २२ वर्ष की आयु में घर त्याग दिया, तथा १४ वर्ष निरन्तर योग-विद्या और वेद-विद्या सीखने के लिए कठिन-से-कठिन और दुर्गम-से-दुर्गम स्थान पर पहुंचते रहे।

योग और मोक्ष की खोज

सच्चे महादेव के दर्शन पाने के लिये, और वास्तविक योगियों की खोज में स्वामी दयानन्द उत्तराखण्ड में जा पहुंचे। ऋषिकेश, टिहरी, केदारघाट, तुङ्गनाथ इत्यादि में घूमते, और अनेक कष्ट सहन करते 'ऊखीमठ' में पहुंच गये। वहां का महन्त स्वामीजी के ज्ञान और गुणों को देखकर कहने लगा—'यदि हमारे शिष्य बन जाओ, तो गद्दी के स्वामी बन सकोगे। लाखों रुपयों की सम्पत्ति तुम्हारे हाथ होगी, और तुम महन्त कहलाओगे।' यह प्रलोभन सामने देखकर स्वामीजी ने कहा—'तुम्हारा कथन सब व्यर्थ है। मेरे पिता की सम्पत्ति तुम्हारे पूजा-पाठ के पाखण्ड द्वारा एकत्रित की हुई पूञ्जी से कई गुणा अधिक है। जब मैं उसे त्याग आया हूं, तो आपकी सम्पत्ति पर कब ध्यान दे सकता हूं? जिस ध्येय से प्रेरित होकर मैंने सकल सांसारिक सुखों से मुंह मोड़ा है, उस ध्येय की पूर्ति यहां नहीं हो सकती।'

महन्त ने पूछा—'आपका वह ध्येय क्या है? किस वस्तु की जिज्ञासा में मग्न आप इतने कष्ट उठा रहे हो?' स्वामीजी ने उत्तर दिया—'सत्य योग-विद्या और मोक्ष चाहता हूं। जब तक यह प्रयोजन सिद्ध न होगा, तब तक तपश्चर्या करता हुआ मनुष्यमात्र के कल्याण और स्वदेशोपकार निरन्तर करता रहूंगा।'

तीसरा चमत्कार

संसार में दो ही प्रसिद्ध स्थान हैं, जहां योगीजन निवास करते हैं। एक—नर्वदा का तट, और दूसरा—उत्तराखण्ड। महाराज ने इन दोनों स्थानों को खोज डाला। नर्वदा नदी के तट पर की सब कुटियाओं में रहनेवालों को देखा। उत्तराखण्ड की कौनसी गुफा है,

जिसमें महाराज नहीं पहुंचे ? कौनसा मठ है, जहां जाकर योगियों का अनुसन्धान उन्होंने नहीं किया ? और अन्त में जिन प्रियतम की खोज में वह घर से निकले थे, जिस महादेव को पाने के लिए उन्होंने माता-पिता के प्यार को छोड़ा था, उसे योग-विद्या द्वारा पा ही लिया। अब क्या बाकी रह गया था, जिसके लिए वे जीवित रहते ?

महाराज कहते हैं-- 'एक बार मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इसी हिमराशि में पड़े-पड़े ही मैं अपने प्राणों का अन्त कर दूं। किन्तु थोड़ी ही देर में ज्ञान-लालसा इतनी प्रबल हो उठी कि मैंने वह विचार छोड़ दिया।'

तब महाराज विशेष ज्ञान-वृद्धि के लिए मथुरा पहुंचे। और स्वामी विरजानन्दजी के पास तीन वर्ष रहकर ज्ञान के कोष में अधिक वृद्धि की।

जब विदा होने का समय आया, और गुरु-दक्षिणा की बात चली, तो गुरु ने कहा—'सौम्य ! मैं तुमसे किसी प्रकार के धन की दक्षिणा नहीं चाहता। तुम प्रतिज्ञा करो कि जितने दिन जीवित रहोगे, उतने दिन आर्य्यावर्त में आर्ष-ग्रन्थों की महिमा स्थापित करोगे, अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन करोगे, और भारत में वैदिक-धर्म की स्थापना के निमित्त अपने प्राण तक अर्पण कर दोगे।'

महाराज ने उत्तर में कहा—'तथास्तु'। और फिर कहा—'श्री महाराज देखेंगे कि उनका प्रिय शिष्य उनके आदेश का किस प्रकार पालन करता है।'

इन तीन चमत्कारों के पश्चात् महाराज युद्धक्षेत्र में निकलते हैं।

कामदेव से बचने के उपाय

मेरठ में पं० गंगाराम ने स्वामीजी के पास कृष्ण-अभ्रक देखकर कहा—'इससे तो कामदेव बढ़ता है, आप इससे कैसे बचे ?' स्वामीजी ने कहा—'इसकी युक्ति है। एकान्तसेवी रहो। नाच तमाशे मत देखो। प्रणव का रात-दिन जप करो। जब अत्यन्त आलस्य प्रतीत हो, तब सो जाओ। इससे गहरी निद्रा आती है, और मनुष्य स्वप्न नहीं देखता। निद्रा खुलने पर भजन में रत हो जाओ। न बुरा देखो, न बुरा सुनो। और चित्त की वृत्तियों को चलायमान मत होने दो।'

रोओ मत, हंसो

स्वामीजी जयपुर से हरिद्वार को प्रस्थान करने लगे, तो रामदयालु कामदार और सरदार रणपतसिंह रोने लगे। स्वामीजी ने कहा—'हमने तुम्हें रोने का उपदेश नहीं दिया, बल्कि हंसते रहने के लिए उपदेश किया था।'

सर्वं वै पूर्णं स्वाहा

स्वामीजी ने कुम्भ पर देखा कि जनता अन्धकार में फंसी हुई है। केवल आडम्बर ही धर्म रह गया है। स्वामीजी के मन में देश-हित और समाज-कल्याण की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा कि इस प्रकार अन्य साधुओं की भांति रहने-सहने से काम नहीं चलेगा। उन्हें संसार की मोहवासना से सर्वथा ऊंचा उठना चाहिए। जो सामान—वस्त्र, पुस्तक, धन आदि उनके पास था, वह भी उनके मार्ग में बाधारूप प्रतीत होने लगा। इन विचारों का उनके मन में

स्फुरण हो ही रहा था कि एक दिन व्याख्यान देते समय वह एका-एक गद्-गद् हो एठे, और सर्वं वै पूर्ण ँस्वाहा कहकर उठ खड़े हुए। फलत: उठने के साथ ही जो कुछ उनके पास था, उसे लोगों में बांटने लगे। स्वामी कैलासपर्वत ने उनसे कहा कि—'आप ऐसा क्यों करते हैं' ? इस पर स्वामीजी महाराज ने उत्तर दिया—'हम सब कुछ स्पष्ट कहना चाहते हैं। और यह तब तक नहीं हो सकता, जबतक हम अपनी आवश्यकताओं को कम न करें।' केवल एक लंगोट रख-कर बाकी सब बांट दिया।

गायत्री-जाप

फर्रुखाबाद में ला० मन्नीलाल और जगन्नाथ स्वामीजी के दर्शनों को गये। उस समय वह समाधिस्थ थे। यह लोग वहीं चुप-चाप बैठ गये। जब उनकी समाधि भङ्ग हुई, तो उन्होंने पूछा—'गायत्री-जाप का क्या फल है'? स्वामीजी ने कहा—'इससे बुद्धि शुद्ध होती है, और सन्ध्या में सब को गायत्री का जप करना चाहिये।'

❀❀

ओ३म्-जाप

चासी में एक धुनिया नित्य स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुआ करता था। और बड़े चाव से महाराज के उपदेश सुना करता था, परन्तु था बेचारा अनपढ़। उसने एक दिन अत्यन्त विनम्रभाव से निवेदन किया—'महाराज ! क्या कोई ऐसी विधि भी है, जिससे मुझ जैसे अज्ञानी जीव का भी कल्याण हो'? महाराज ने परम दयालुता से उसे 'ओ३म्' के जाप का उपदेश किया। और कहा—'व्यवहार में सच्चे रहो। जितनी रूई कोई तुम्हें धुनने को दे, उसे उतनी ही रूई धुनकर लौटा दो। इसी से तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।'

प्रतिज्ञा क्या की, और किया क्या ?

पण्डित हीरावल्लभ बहुत बड़े विद्वान् थे। उन्हें ऋग्वेद और यजुर्वेद कण्ठस्थ थे। दर्शनों में वह निपुण थे। व्याकरण के प्रसिद्ध पण्डित थे। एक दिन अन्य अनेक पण्डितों सहित वह अनूपशहर से स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ करने कर्णवास आये। जिस समय पं० हीरावल्लभ स्वामीजी के पास पहुंचे, तो वहां दो हज़ार मनुष्यों की भीड़ थी। हीरावल्लभ ने आते ही सभास्थल के मध्य में एक छोटे से सुन्दर सिंहासन पर गोमतीचक्र, बालमुकन्द और शालग्राम आदि की मूर्तियां स्थापित कर दीं। और ऊंचे स्वर में प्रतिज्ञा की कि अब मैं यहां से तभी उठूंगा, जब स्वामीजी के हाथ से उन्हें भोग लगवा लूंगा। पहला दिन बीत गया, दूसरा दिन भी चला गया। इसी प्रकार कई दिन शास्त्रार्थ-संग्राम चलता रहा। एक दिन तो नौ घण्टे लगातार वाद-विवाद होता रहा। अन्त में सारी सभा के समक्ष पं० हीरावल्लभ ने कहा—'स्वामीजी जो कुछ कहते हैं, वह सब सत्य है, प्रामाणिक है। उनकी विद्या अगाध है, उनका शास्त्रानुशीलन अपार है।' फिर उसी समय मूर्तियों को सिंहासन पर से उठाकर गङ्गा में फेंक दिया, और उनकी जगह सिंहासन पर वेद स्थापित कर दिये।

तुससी का पौधा

स्वामीजी भोजन के पश्चात् तुलसी की पत्ती खाया करते थे। कारण पूछने पर कहते थे—'इससे मुंह सुगन्धित रहता है। लोगों को तुलसी का पौधा अपने घरों में लगाना चाहिये। इसमें से सुखप्रद वायु भी निकलती है।'

दीन दशा देखी नहीं जाती

कर्णवास में पं० इन्द्रमणि ने स्वामीजी से कहा कि--'आप अवधूत होकर-खण्डन-मण्डन के बखेड़े में क्यों पड़े हैं ?' इस पर उन्होंने उत्तर दिया—'मेरे लिये यह बखेड़ा नहीं है, प्रत्युत यह ऋषि-ऋण को चुकाना है। स्वार्थी लोगों ने ऋषि-सन्तान को कुरीतियों में फंसा रखा है, मुझसे उनकी यह दीन दशा देखी नहीं जाती। मैंने उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रण कर लिया है।'

आत्म-प्रेमी कैसे होते हैं ?

एक दिन गङ्गा-तीर पर एक साधु कमण्डलु आदि प्रक्षालन करके वस्त्र धोने में प्रवृत्त था। वह था मायावादी। दैवयोग से भ्रमण करते हुए स्वामीजी भी वहीं पहुंचे। साधु ने स्वामीजी को सम्बोधन करके कहा—'इतने त्यागी परमहंस अवधूत होकर भी आप खण्डन-मण्डनरूप प्रवृत्ति के जटिल जाल में क्यों उलझ रहे हैं ? निर्लेप होकर क्यों नहीं विचरते ?' महाराज मुस्कराकर बोले--'हम तो यह सब कुछ करते हुए भी निर्लेप हैं। रही प्रवृत्ति की बात, सो शास्त्रीय-प्रवृत्ति प्रजा-प्रेम से प्रेरित होकर सभी को करना उचित है।'

साधु कहने लगा—'प्रजा-प्रेम का नया बखेड़ा क्यों डालते हो? आत्मा से प्रेम करो।'

स्वामीजी ने पूछा—'महात्मन् ! आप किससे प्रेम करते हैं ?'

साधु ने उत्तर दिया—'आत्मा से।'

स्वामीजी—'वह प्रेममय आत्मा कहां है ?'

साधु—'वह राजा से लेकर रङ्कपर्यन्त, और हाथी से लेकर

कीट तक सर्वत्र ऊंच-नीच में परिपूर्ण है।'

स्वामीजी—'जो आत्मा सब में रमा हुआ है, क्या आप सचमुच उसी से प्रेम करते हैं ?'

साधु—'तो क्या हमने मिथ्या वचन बोला ?'

तब महाराज ने पूर्ण गम्भीरता से कहा—'नहीं, आप उस महान् आत्मा से प्रेम नहीं करते। आपको अपनी भिक्षा की चिन्ता है। अपने वस्त्र उज्ज्वल बनाने का ध्यान है, अपने भरण-पोषण का विचार है। क्या आपने कभी उन बन्धुओं का भी चिन्तन किया है, जो अपने देश में लाखों की संख्या में भूख की चिता पर पड़े हुए रात दिन बारहों महीने भीतर ही भीतर जलकर राख हो रहे हैं? सहस्रों मनुष्य आपके देश में ऐसे हैं, जिन्हें आजीवन पेटभर खाना नहीं मिलता। लाखों निर्धन दीन ग्रामीण सड़े-गले झोपड़ों में जीवन काट रहे हैं। कितनों ही को तो मरने के लिए भी स्थान नहीं मिलता, और वह सड़कों पर पड़े मृत्यु का ग्रास हो जाते हैं। महात्मन्! यदि आत्मा से—और विराट् आत्मा से प्रेम करना है, तो अपने अंगों की भांति सबको अपनाना होगा। सच्चा परमात्म-प्रेमी किसी से घृणा नहीं करता। वह दूसरों के दुःख-निवारण करता है। उनके कष्ट-क्लेश काटता है। ऐसे जन ही आत्म-प्रेमी होते हैं'। यह सुनकर वह साधु महाराज के चरणों में गिर पड़ा।

उग्र तपस्वी

गंगातीर पर विचरते हुए स्वामीजी का जीवन एक उग्र तपस्वी का जीवन था। उनके तन पर कोपीन के सिवा अन्य कुछ न होता था। इस दिगम्बर दशा में उन्होंने वनों में, जंगलों में, जनरहित स्थानों में, गंगा की रेती में पोष-माघ की लम्बी शीतल रातें काटीं। वैशाख-ज्येष्ठ की कड़ी धूप, और तन को झुलसा देनेवाली लू

सहन की। वर्षा ऋतु की बौछारें, और सावन भादों की झड़ियां झेलीं। वे एकान्त स्थान में जाकर स्नान किया करते थे। कोपीन धोकर सूखने डाल देते, और आप सिद्धासन लगाकर बालू पर बैठ जाते। जब कौपीन सूख जाती, तो फिर उसे बांधकर अपने आसन पर आते। योगीराज का रात्रि का समय प्रायः तुर्यावस्था में ही बीता करता। कई परीक्षक आधी रात और तीसरे पहर में उन्हें देखने गये, परन्तु महाराज को ध्यानावस्थित ही पाया।

❀❀

ब्रह्मचर्य और योगबल

ठाकुर गोपालसिंह ने बुलन्दशहर में महाराज से पूछा—'आप पर शीत का कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता।' उन्होंने कहा कि-'ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इसका कारण है'। ठाकुर महाशय कहने लगे—'हम कैसे जानें ?' तब महाराज ने अपने हाथों के अंगूठे दोनों घुटनों पर रखकर दबाये, तो तत्काल सारे शरीर से पसीना चू निकला। लोग देखकर चकित रह गये, क्योंकि उस समय अत्यन्त जाड़ा पड़ रहा था। लोग गरम कपड़ों में भी कांप रहे थे, किन्तु महाराज नग्न बैठकर शरीर से पसीना बहा रहे थे। तब लोगों को महाराज के योगबल में पूरा विश्वास हो गया।

❀❀

क्रोधी जाट भी भक्त बन गया

सोरों में एक दिन महाराज जब उपदेश कर रहे थे, तो एक जाट क्रोध में भरा हुआ एक मोटा लठ्ठ लिये हुए आया। और आते ही बोला—'अरे साधु ! तू देवताओं की निन्दा करता है, बतला यह लठ्ठ तेरे कहां मारकर तुझे समाप्त करूं ?' यह सुनकर सारी

सभा विचलित हो गई,परन्तु महाराज स्थिर भाव से शान्त रहे। पुनः गम्भीरतापूर्वक कहने लगे—'यदि तू समझता है कि मेरा धर्म-प्रचार करना अपराध है, तो इसका अपराधी मेरा मस्तिष्क है। वही मुझसे यह काम करा रहा है, उसी मेरे सिर पर लठ्ठ मार।' यह कहकर महाराज ने अपनी दृष्टि उस पर डाली। महाराज की आखें ज्यों ही उसकी आंखों के सामने हुईं, त्यों ही उसका सिंह-भाव विलुप्त हो गया। और वह चरणों में गिर पड़ा, और रोकर अपना अपराध क्षमा कराने लगा।

हमारा रक्षक भगवान् है

राव कर्णसिंह को महाराज के सत्यभाषण से कुछ ऐसी चिढ़ हो गई कि वह महाराज की जान के ग्राहक बन गये। कभी वैरागियों को उकसाते, कभी गुण्डों को तैयार करते। जब यह सारे यत्न निष्फल हो गये. तो अन्त में अपने नोकरों को तैय्यार किया। और तीन नोकरों को लपलपाती तलवारें देकर स्वामीजी के वध के लिए रात के समय उनकी कुटिया की ओर भेज दिया। रात आधी बीत चुकी थी, सन्नाटा छा रहा था। हां, गंगा के जल की ध्वनि अवश्य कर्णगोचर होती थी, और रह-रह कर पवन का झोंका वृक्ष के सूखे पत्तों को छेड़कर कुछ शोर-सा मचा देता था। स्वामीजी उस समय कुटिया में तुर्यावस्था में ध्यानारूढ़ थे। थोड़ी दूरी पर कैथलसिंह गाढ़ी निद्रा में पड़ा खर्राटे ले रहा था। कर्णसिंह के तीनों नौकर तलवार लिये चुपचाप कुटिया के निकट पहुंच गये। तलवारें तो उनके पास तीक्ष्ण थीं, परन्तु एक वीतराग महात्मा को मारने का साहस उनके पास न था। तन कांप रहा था, पांव डगमगा रहे थे। गंगा-तट पर बनी हुई कुटिया चुपचाप खड़ी थी, परन्तु इन पापियों को वह कुटिया चलती हुई दिखाई देने लगी। वे भयभीत होकर भाग

गये, और कर्णसिंह के पास पहुंचकर ही दम लिया। कर्णसिंह ने धमका कर फिर भेजा। गिरते-पड़ते वह फिर कुटिया के पास पहुंचे। अब के स्वामीजी उठ बैठे थे। कातिलों को समीप देखकर महाराज ने बलपूर्वक 'हुंकार' किया, और भूमि पर जोर से एक लात भी मारी। सिंहनाद सुनकर वह डर के मारे मूर्छित होकर गिर पड़े। उनके हाथों से तलवारें भी छूट गईं। और फिर संभलकर भाग गये। महाराज की सिंह-गर्जना को सुनकर कैथलसिंह की भी आंख खुल गई। वह कांपता हुआ स्वामीजी से बोला—'वे दुष्ट कहीं फिर न आ जायें, इसलिये चलिये किसी ऊंचे-नीचे स्थान में छिपकर रात बिता लें।'

स्वामीजी ने 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः' का श्लोक पढ़कर कहा—'कैथलसिंह! संन्यासी-जन अपनी रक्षा के निमित्त गढ़ और गुहा का आश्रय नहीं ढूंढा करते। हमारा रक्षक तो केवल एक भक्तवत्सल भगवान् ही है।'

ब्रह्मचर्य

कायमगंज में महाराज ने उपदेश देते हुए कहा—'जो लोग अधिक स्त्री-प्रसंग करते हैं, वह दुबले हो जाते हैं। और जो अधिक नहीं करते, वह बलिष्ठ रहते हैं।'

हमारा शुक्र कभी अस्त नहीं होता

लाला जगन्नाथ के यज्ञोपवीत पर पौराणिक पण्डितों ने कहना आरम्भ किया कि यह यज्ञोपवीत अत्यन्त अनिष्टकारी होगा। क्योंकि प्रथम तो गणेश आदि का पूजन नहीं हुआ, दूसरे शुक्रास्त के समय

हुआ। इसका उत्तर स्वामीजी ने यह दिया—'गणेशादि का पूजन तो वेदविरुद्ध है। इसका न होना कभी अनिष्टकारी नहीं हो सकता। और हमारा शुक्र तो ब्रह्म (तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म) है, वह कभी अस्त नहीं होता'।

भ्रष्ट भोजन कौनसा ?

एक दिन सुखवासीलाल साध स्वामीजी के लिए कढ़ी और भात बनाकर लाये, और उन्होंने उसे खाया। इस पर ब्राह्मणों ने कहा—'आप भ्रष्ट हो गये, जो साधों के घर का भोजन खा लिया।' महाराज ने उत्तर दिया कि—'भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है। एक तो—यदि किसी को दुःख देकर धन प्राप्त किया जाय, और उससे अन्न आदि क्रय करके भोजन बनाया जाय। दूसरे—भोजन मलिन हो, या उसमें कोई मलिन वस्तु गिर जाय। साध लोगों का परिश्रम का पैसा है, उससे प्राप्त किया हुआ भोजन उत्तम है।

वही मेरी रक्षा करेगा

फर्रुखाबाद में स्वामीजी पर आक्रमण हुए, तो लाला जगन्नाथ ने स्वामीजी से कहा—'आप विश्रान्त के निचले भाग में रहिये, वह चारों ओर से सुरक्षित है'। स्वामीजी ने कहा—'यहां तो आप मेरी रक्षा कर लेंगे, परन्तु अन्यत्र कौन करेगा ? मैंने आजतक अकेले ही भ्रमण किया, और आगे भी करूंगा। कई बार मेरे प्राण-हरण की चेष्टा की गई, किन्तु सर्वरक्षक परमात्मा ने सर्वत्र मेरी रक्षा की। भविष्य में भी वही करेगा, आप चिन्ता न करें।'

गालियां देने वाला भक्त

एक दिन प्रातःकाल महाराज भ्रमण करने जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें एक हट्टा-कट्टा उजड्ड प्रकृति का मनुष्य मिला। उसने उन्हें अनेक दुर्वचन कहने आरम्भ किये कि—'तू ईसाईयों का नौकर है, और हिन्दुओं को ईसाई बनाने आया है।' महाराज उसके दुर्वाक्य सुनकर मुस्कराते हुए आगे बढ़ गये। उसका नाम सिद्धू था। था तो ब्राह्मण, परन्तु निरक्षर और कोरा लठ्ठ। स्वामीजी को चुप देखकर उसका साहस और बढ़ गया, और स्वामीजी के डेरे पर जाकर गालियां देने लगा। स्वामीजी ने अत्यन्त प्रेम भरे स्वर और कोमल शब्दों से उसका स्वागत किया, और बैठने को कहा। इस शिष्टाचार से उसका कठोर-हृदय भी पिघल गया, और उसका जी भर आया। वह महाराज के चरणों पर गिर गया और रोकर अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा। महाराज ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'तुम्हारे दुर्वचन हम तक नहीं पहुंचे। वह आकाश से प्रकट हुये थे, और उसी में विलीन हो गये, तुम शोक न करो'।

मनुष्य का कर्त्तव्य

लाला जगन्नाथ ने फर्रुखाबाद में महाराज से पूछा कि'कृपा करके बतलायें कि मनुष्य का क्या कर्त्तव्य है?' स्वामीजी ने कहा—'मनुष्य का कर्त्तव्य ईश्वर-प्राप्ति है, जो ईश्वरीय-आज्ञाओं के पालन अर्थात् वेदानुकूल आचरण, मनूक्त धर्म के दस लक्षणों पर चलने; और अधर्म-त्याग से ही हो सकती है'।

नाम रखने भी नहीं आते

एक दिन कन्नौज में पं० गयादीन जब स्वामीजी से मिले, और अपना नाम बताया, तो महाराज ने कहा कि—'जब दीन (=धर्म) ही गया, तो आपके पास बचा ही क्या ?' फिर कहा कि—'खेद है कि लोगों को ठीक नाम रखने भी नहीं आते' और नामकरण की रीति दर्शाते हुए कहा कि 'शास्त्रोक्त नाम रखने चाहियें'।

गाली देनेवाले पर दयालुता

कानपुर में महाराज के लिए फल-मिठाई श्रद्धालु भक्त ले आते थे, और वह उसे लोगों में बांट दिया करते थे। ऐसे भक्तों के साथ एक ऐसा 'भक्त' भी था, जो नियमपूर्वक स्वामीजी के स्थल के निकट पहुंचकर गालियां दिया करता था, और कोई दिन खाली नहीं जाने देता था। एक दिन ऐसा हुआ कि फल तथा मिठाई बहुत बच गये। महाराज सोच रहे थे कि यह किसे दें? कि इतने में वह गालियां देने-वाला दिखाई दिया। महाराज ने उसको बुलाकर सब पदार्थ उसे दे दिये, और कहा कि—'प्रतिदिन आकर मिठाई ले जाया करो।' वह भी रोज आता और ले जाता। एक दिन उसके आत्मा ने उसे धिक्कारा। वह महाराज के चरणों में गिरकर कहने लगा—'महा-राज ! यदि मेरी दुष्टता का पार नहीं, तो आपकी सज्जनता की भी सीमा नहीं। मेरा अपराध क्षमा कीजिये।' महाराज ने कहा—'तुम्हारी गालियों को हमने अपनी स्मृति में स्थान नहीं दिया। तुम्हें उसके कारण दुःखी नहीं होना चाहिए'।

❀❀

अर्थसहित ध्यान किया करो।' और साथ ही गायत्री का अर्थ भी स्वामीजी ने लिखवा दिया।

वेदभाष्य का निश्चय

एक दिन कलकत्ता में स्वामीजी ने बलदेवप्रसाद से कहा—'बलदेव'! रईसों के पुत्र तो फारसी-अंग्रेजी ने ले लिये। दरिद्रों के लड़के संस्कृत के लिए रह गये। इन वानरों से कुछ न होगा, अब तो मैं वेद-भाष्य करूंगा।'

बुद्धि जड़ क्यों हो गई?

एक बार कलकत्ता में स्वामीजी ने कहा—

'एक तो अज्ञान-निबन्धन से भारवर्ष के लोगों की बुद्धि जड़ हो गई है, और इसके साथ ही जड़ की उपासना करने से वह और भी जड़ हो गई है। एक चैतन्य निराकार ईश्वर की उपासना के बिना मनुष्य की मुक्ति नहीं हो सकती। ईश्वर-उपासना के कई लक्षण हैं—चित्तशुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह, मनःसंयोग, प्रीति, ईश्वर-गुणगान तथा प्रार्थना।'

सर सय्यद अहमद और हवन

अलीगढ़ में एक दिन सर सय्यद स्वामीजी से मिलने गये। और कहने लगे—'महाराज! आपकी अन्य बातें तो युक्तिसंगत हैं, परन्तु यह समझ में नहीं आता कि थोड़े से हवन से वायु का सुधार कैसे होता है?' महाराज ने कहा—'जैसे थोड़े से बघार से सारी दाल सुवासित हो जाती है, और दूर तक उसकी सुगन्ध जाती है, ऐसे ही

हवन में डाली हुई सामग्री छिन्न-भिन्न होकर वायु में फैलकर उसका सुधार कर देती है'। इससे उनका संशय दूर हो गया।

यह कोलाहल क्यों ?

मिर्जापुर में एक दिन पण्डित काशीनाथशास्त्री ने स्वामीजी को आज्ञापूर्वक कहा—'आपने किस प्रयोजन के लिए देशभर में कोलाहल मचा रखा है ?' महाराज शान्तिपूर्वक बोले—'पन्थाई पण्डितों ने लोगों को धोखे के जाल में फंसा रखा है। जड़-पूजन से मनुष्यों की बुद्धि में जड़ता आ गई है। देशवासियों में सत्याऽसत्य के जानने का विवेक अति मन्द हो गया है। इन सबके सुधार ही के लिए मैं कोलाहल कर रहा हूं।'

सर्वनाश हो गया है

'मूर्तिपूजा यदि लोग करते रहें, तो इसमें क्या हानि है ?' यह प्रश्न एक सज्जन ने पूछा। उत्तर में महाराज ने कहा—'इसमें हानि-ही-हानि है, लाभ तो कुछ भी नहीं। मूर्ति जड़ है, इसे ईश्वर मानोगे, तो ईश्वर भी जड़ सिद्ध होगा। यदि यह कहो कि मूर्ति में ईश्वरांश आ जाता है, तो ठीक नहीं। इससे ईश्वर अखण्ड सिद्ध नहीं हो सकता। भावना में भगवान् हैं यह कहो, तो मैं कहता हूं कि काष्ठ-खण्ड में इक्षु-दण्ड की, और लोष्ठ में मिश्री की भावना करने से क्या मुख मीठा हो सकता है ? मृग-तृष्णा में मृग जल की बहुतेरी भावना करता है, परन्तु उसकी प्यास नहीं बुझती। विश्वास भावना और कल्पना के साथ सत्य का होना भी अत्यावश्यक है। मूर्तिपूजन से जो हानियां हो रही हैं, उनका वर्णन कैसे हो ? केवल यही समझ लो कि इससे सर्वनाश हो गया है। जितना धन समय शक्ति इस

व्यर्थ और मिथ्या काम में लग रही है,उससे आर्यजाति का भी भारी ह्रास हो रहा है। इसे छोड़ोगे, तभी बचोगे।'

स्त्रियों के मुख्य धर्म

महाराज भड़ोंच में अमृत-वर्षा कर रहे थे। तो एक दिन बहुत से भार्गव ब्राह्मण और स्त्रियां स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिए आये। स्त्रियों में अधिक संख्या अद्वैतानन्द की चेलियों की थी। स्वामीजी स्त्रियों से वार्तालाप नहीं करना चाहते थे। किन्तु उनके विशेष आग्रह और अनुरोध पर एक पर्दा उनके और अपने बीच डालकर उन्हें यह उपदेश दिया—'पति-सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है, और पतियों से ही उपदेश लेना तुम्हारा कर्तव्य है। मन्दिरों आदि स्थानों में आना-जाना,और साधु-संन्यासियों के दर्शनों के लिए इधर-उधर घूमना स्त्रीजाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्रीजाति का मुख्य धर्म पति-सेवा और उत्तम रीति से सन्तति का पालन-पोषण ही है।'

लाहौर में एक दिन कुछ स्त्रियां महाराज के दर्शन के लिए आयीं। और पूछा—'ज्ञान और शान्ति कैसे मिले?' महाराज ने उत्तर दिया—'तुम्हारे पति ही तुम्हारे गुरु हैं। उन्हीं की सेवा करो, किसी साधु को गुरु मत बनाओ। विद्या पढ़ो, और अपने पति को हमारे पास भेजा करो। उनके द्वारा हमारे उपदेश से लाभ उठाया करो।'

सेवा का भाव

भड़ोंच में स्वामीजी के साथ पण्डित कृष्णराम भी रहते थे। एक दिन पण्डितजी को ज्वर हो आया। महाराज स्वयं उनका सिर दबाने लगे। पण्डित जी ने कहा—'महाराज! आप क्या करते हैं,मैं आपसे कैसे सेवा करा सकता हूं?' महाराज बोले—'इसमें कोई हानि

नहीं, दूसरों की सेवा करना मनुष्य का धर्म है। यदि बड़े छोटों की सेवा न करेंगे, तो छोटों में सेवा का भाव कैसे आयेगा ?'

ईश्वर-विश्वास का जादू क्या करता है ?

'वही लोग अपने कार्यों में सफल होते हैं, जिनका एक अनादि अजर अमर निराकार ईश्वर में विश्वास होता है। वही अपने धर्म के विस्तार के उपायों को फैलाते हैं। उनके मन एक-दूसरे से मिल जाते हैं। आपस में प्रेम की वृद्धि होती है, और धर्म का अभिमान आ जाता है। वह एक-दूसरे की प्रत्येक सम्भव उपाय से सहायता करते है। देखो, अंग्रेज भारतवर्ष में और अन्य स्थानों में कैसा काम कर रहे हैं। इसका कारण उनके मनों का मिलना, और एक धर्म का होना है।' यह बात महाराज ने अहमदाबाद में कहकर यह भी कहा—आर्यों की आपस की फूट और ब्राह्मणों के स्वार्थ के कारण हमारे धर्म के इतने खण्ड हो गये हैं कि अब यह जानना भी कठिन हो गया है कि उनमें से कौन ठीक है। शोक, महाशोक !!

असत्य पर कदापि नहीं

बम्बई में जब आर्यसमाज स्थापित हुआ, तो राजकृष्ण महाराज ने आर्यसमाज के नियम बनाने की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने कहा कि नियम हम स्वयं बनावेंगे, और एक नियमावली बना दी। राजकृष्ण महाराज ने कहा—'नियमों में जीव-ब्रह्म के एकत्व के सिद्धान्त का समावेश होना चाहिए, पीछे से उसे छोड़ देंगे। ऐसा करने से अनेक लोग आर्यसमाज में आ जायेंगे।'

स्वामीजी ने कहा—'मैं आर्यसमाज को असत्य पर कदापि स्थापित नहीं करूंगा।' इस पर राजकृष्ण महाराज स्वामीजी के

शत्रु बन गये। किन्तु स्वामीजी ने उनकी कोई चिन्ता नहीं की।

मिताहार और मितव्यय

बम्बई में महाराज जिस स्थान पर ठहरे हुए थे, वहां उनके और उनके कर्मचारियों के लिए भोजन बनता था। स्वामीजी इस बात का बहुत ध्यान रखते थे कि रसोई में जो पदार्थ बने, वह सब कर्मचारियों को मिल जाय। इसीलिए वह स्वयं भोजन के समय रसोई में चले जाते थे। रसोई में सब वस्तुएं तोलकर रख दी जाती थीं, ताकि आवश्यकता से अधिक भोजन न बने। एक दिन एक कर्मचारी ने महाराज से कहा—'लोग आपको कृपण समझेंगे।' उन्होंने कहा—'मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मिताहार और मितव्यय दुर्गुण नहीं, सद्गुण है।'

तब तो रीछ बड़ा त्यागी है

एक दिन बम्बई में स्वामीजी क्षौर करा रहे थे। एक सज्जन ने आकर कहा—'सन्यासियों का धर्म तो त्याग है, आप देह-विभूषा में क्यों लगे हैं?' स्वामीजी ने हंसते हुए उत्तर दिया—'यदि बाल बढ़ाने ही में त्याग है, तब तो रीछ सब से बड़ा त्यागी है।' यह कहकर उसे उपदेश दिया—'देह की रक्षा के लिए उसे संवारना पाप नहीं है। जो पुरुष परोपकारी हैं, उन्हें अपनी देह की रक्षा करना आवश्यक है, ताकि वह उपकार-कार्य्य अच्छी प्रकार कर सकें।'

कुएं की मिट्टी कुएं में

बम्बई में एक पण्डित ने स्वामीजी से कहा—'सुना है आप

धन ले लेते हैं,जब कि शास्त्र में यह लिखा है कि यतियों को स्वर्ण न देवे। स्वामीजी ने कहा—'सुवर्ण न देवे, तो क्या आपकी सम्मति में रत्न आदि देना चाहिए ?' पुनः उसे समझाया—'यतियों के लिए संग्रह करने का निषेध है। परोपकार में व्यय करने के लिए धन लेना पाप नहीं। हम भी जब एक कौपीन लगाकर गंगातट पर घूमते थे, किसी से कुछ न लेते थे। किन्तु जब से हमने परोपकार के कार्यों में भाग लेना आरम्भ किया है, हमें उन कार्यों के लिए धन लेना पड़ता है। जैसे कुएं की मिट्टी कुएं में ही लग जाती है, ऐसे ही हम भी जो धन जिनसे लेते हैं, वह उन्हीं के हितकर कार्यों में लगा देते हैं।'

तोप के मुंह पर

फर्रुखाबाद में महाराज एक परमात्मा की उपासना का प्रचार कर रहे थे। एक पादरी लूकस ने स्वामीजी से कहा—'क्यों बाबा ! आपको तोप के मुंह पर रखकर आपसे कहा जाये कि यदि तुम मूर्ति को मस्तक नहीं नवाओगे, तो तुम्हें तोप से उड़ा दिया जायेगा। तो आप क्या कहेंगे ?' स्वामीजी ने कहा—'मैं यही कहूंगा कि मुझे उड़ा दो। परन्तु दयानन्द का मस्तक केवल एक परमात्मा ही के सामने झुक सकता है, और किसी के सामने नहीं।'

कुकर्मी का भोजन नहीं खाना

एक दिन साहू श्यामसुन्दर ने, जो मुरादाबाद के रईस थे, परन्तु वेश्यागमनादि दुर्व्यसनों में ग्रस्त थे, स्वामीजी से प्रार्थना की—'महाराज ! मेरे घर पर पधारकर भोजन कीजिये।' स्वामीजी ने इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया। परन्तु उसी समय जब एक दूसरे सज्जन ने यही प्रार्थना की, तो उसे स्वीकार कर लिया। साहू

श्यामसुन्दर ने स्वामीजी को उपालम्भ दिया, तो उस समय तो महाराज चुप रहे, किन्तु व्याख्यान में इस घटना का वर्णन करके और साहू साहब को सम्बोधन करके कहा—'जब तक तू कुकर्म न छोड़ेगा, हम तेरे घर पर जाकर भोजन न करेंगे।'

दुःखी कौन और सुखी कौन ?

किसी-किसी दिन महाराज व्याख्यान में शिक्षाप्रद कहानी भी सुना देते थे। एक दिन सहारनपुर में व्याख्यान देते हुए, और यह बतलाते हुए कि दुःखी कौन और सुखी कौन है, महाराज ने यह कहानी सुनाई—'एक धनाढ्य महाजन था। उसका एक मुकदमा अदालत में चल रहा था। मुकद्दमे की पेशी की तारीख से कई दिन पहले से ही उसे इस चिन्ता ने आ घेरा कि देखें उस दिन क्या होगा ? इस चिन्ता के कारण उसे नींद तक न आती थी। उसके नौकर-चाकर अपना काम करके चले जाते, और निश्चिन्त होकर सुख की नींद सोते। परन्तु वह सारी रात पलंग पर करवटें बदलता रहता। पेशी के दिन वह पालकी में बैठकर अदालत में गया। कहार तो पालकी रखकर चिलम पीने लगे, उन्हें किसी बात की चिन्ता न थी। परन्तु महाजन चिन्तित और उदास ही रहा।' इससे सिद्ध होता है कि धन में सुख नहीं।

सच्ची सरकार का नौकर

गवर्नर जनरल से एक बार महाराज ने भेंट की। स्वामीजी ने सुनाया कि उन्हें सत्य के प्रचार में कितने घोर कष्ट उठाने पड़ते हैं, जिन्हें सुनकर गवर्नर जनरल ने आश्चर्य प्रकट किया। फिर सरकारी नौकरी की बात चली, तो गवर्नर जनरल ने पूछा—'क्या आप राज-नौकरी को बुरा समझते हैं ?' स्वामीजी ने कहा—'मैं संन्यासी

हूं, और सच्ची सरकार =परमेश्वर का नौकर हो गया हूं, उसी पर भरोसा रखता हूं। इसलिए किसी मनुष्य की नौकरी करना मैं अपने लिए अच्छा नहीं समझता।'

प्रार्थना का फल

चांदपुर के मेले में मुक्ति के साधनों का वर्णन करते हुए महाराज ने छठा साधन 'प्रार्थना' बतलाया था। और प्रार्थना की व्याख्या करते हुए उसका फल यह बतलाया था—

'प्रार्थना का फल यह है कि जब कोई जन अपने सच्चे मन से, अपने आत्मा से, अपने प्राण से, अपने सारे सामर्थ्य से परमेश्वर का भजन करता है, तब वह कृपामय परमात्मा उसको अपने आनन्द में निमग्न कर देता है। जैसे छोटा बालक घर की छत से अथवा नीचे से अपने माता-पिता के पास जाना चाहता है, तो उसके मां-बाप इस भय से कि कहीं हमारे प्रिय-पुत्र को इधर-उधर गिर पड़ने से कष्ट न हो, अपने सहस्रों कामों को छोड़कर दौड़कर उसे गोद में उठा लेते हैं, ऐसे ही परम कृपानिधि परमात्मा की ओर यदि कोई सच्चे आत्म-भाव से चलता है, तो वह भी अपने अनन्त शक्तिमय हाथों से उस जीव को उठाकर सदा के लिए अपनी गोद में रख लेता है। परमात्मा माता-पिता की भांति अपने भक्तों को सदा सुखसम्पन्न करने की कृपा करता है।'

ईसाई और पुनर्जन्म

एक ईसाई लुधियाना में महाराज के पास आया, और पुनर्जन्म पर शङ्का की। स्वामीजी ने उससे पूछा कि खाना-पीना सोना आदि देहधारी जीव के लिए सम्भव है, या देहरहित के लिए?

ईसाई—देहधारी ही के लिए सम्भव है।

स्वामीजी—तुम यह मानते हो कि जीव का एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना ही पुनर्जन्म है।

ईसाई—ठीक है।

स्वामीजी—जो आत्माएं स्वर्ग में जाकर अनेक भोग भोगेंगी, वह विना देह धारण किये कैसे भोगेंगी? और जब देह धारण करेंगी, तो क्या वह उनका पुनर्जन्म न होगा?

ईसाई अवाक् रह गया।

किसको प्रसन्न करूं?

महाराज दिल्ली में थे, तो पंजाब के ब्रह्मसमाजियों तथा अन्य लोगों ने उनसे लाहौर पधारने की प्रार्थना की। महाराज लाहौर पहुंचे, व्याख्यान आरम्भ हुए। 'ब्रह्मसमाज ही में वेद ईश्वरकृत हैं, और पुनर्जन्म होता है' विषय पर व्याख्यान हुआ। ब्रह्मी भाई घबरा गए, और स्वामीजी से रुष्ट हो गये। जब मूर्तिपूजा का खण्डन हुआ, तो दूसरे लोग भी नाराज हो गये। स्वामीजी को दीवान रत्नचन्द्र के बाग से निकाल दिया गया। एक दिन पं० मनफूल ने उनसे कहा कि यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें, तो हिन्दू आपसे अप्रसन्न न हों। और महाराजा जम्मू-कश्मीर आपसे बहुत प्रसन्न होंगे। महाराज ने कहा—'महाराज जम्मू-कश्मीर को प्रसन्न करूं अथवा ईश्वर की आज्ञा का पालन करूं, जो वेदों में अङ्कित है?'

उपासना-धर्म का निरादर

एक दिन महाराज आर्यसमाज लाहौर के साप्ताहिक सत्संग में पधारे। उस समय उपासना हो रही थी। महाराज को आता देखकर

सब लोग सम्मान-प्रदर्शनार्थ खड़े हो गये। उपासना की समाप्ति पर महाराज ने उपदेश दिया कि—'उपासनाकाल में उपासक ईश्वर के सत्सङ्ग में मग्न होते हैं। ऐसे समय कोई कितना ही बड़ा मनुष्य आये, उपासकों को खड़े न होना चाहिये। क्योंकि परमेश्वर से बड़ा कोई नहीं है। ऐसा करने से उपासनाधर्म का निरादर होता है।'

किस धर्म का प्रचार ?

अमृतसर में कमिश्नर पर्रकिस साहब स्वामीजी के पास पहुंचे। और नम्रता से पूछा कि—'आप किस प्रकार के धर्म का प्रचार करना चाहते हैं?' स्वामीजी ने कहा—'हम केवल यह चाहते हैं कि लोग वेद की आज्ञाओं का पालन करें। और केवल निराकार अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें। शुभ गुणों को ग्रहण करें, और अवगुणों को त्याग दें।'

आत्मा की न्यूनता कैसे दूर हो ?

हरद्वार में संवत् १९३६ के कुम्भ पर महाराज ने पूरे बल के साथ प्रचार किया। प्रतिदिन सहस्रों लोग स्वामीजी के दर्शन करने आते, और अपने सन्देह दूर करते। एक दिन एक वेदान्ती साधु रामसिंह ने महाराज से पूछा—'आप ज्ञानी होकर भी भिक्षुओं के समान ईश्वर से भिक्षा मांगते हैं। ऐसे कर्म तो अज्ञानियों के लिए हैं।' महाराज ने उत्तर दिया—'यह सत्य नहीं कि ज्ञानीजन प्रार्थना नहीं करते। आप अपने को पूर्ण वेदान्ती मानते हैं, फिर भी महाकाव्य रटते रहते हैं। भूख-प्यास आदि शारीरिक न्यूनतायें जैसे अन्न-जल से पूरी होती हैं, वैसे ही आत्मा की न्यूनतायें विना ईश्वरोपासना के पूरी नहीं हो सकतीं।'

ईंट मारनेवालों को लड्डू

अमृतसर में एक बाल-पाठशाला के अध्यापक ने एक दिन अपने छात्रों से कहा—'आज स्वामीजी की कथा में चलेंगे तुम अपनी झोलियों में ईंट रोड़े और कङ्कर भरकर मेरे साथ चलना। जब मैं संकेत करूं, तो तुम कथा कहनेवाले पर ईंट रोड़े और कङ्कर फेंक देना, मैं तुम्हें लड्डू दूंगा। अबोध बालकों ने अपनी झोलियां भरलीं, और अध्यापक के साथ चल पड़े। व्याख्यान रात्रि के ८ बजे समाप्त हुआ करता था। जब कुछ-कुछ अंधेरा हो गया, बालक अध्यापक का संकेत पाकर महाराज पर ईंट रोड़े और कङ्कर फेंकने लगे। सभा में हलचल मच गई, किन्तु महाराज ने सबको शान्त कर दिया। पुलिस कुछ बालकों को पकड़कर उनके सामने लाई,तो बालक फूट-फूट कर रोने लगे। महाराज ने उन्हें ढाढस बंधाकर उनसे ऐसा कार्य करने का कारण पूछा, तो उन्होंने सारा वृत्तान्त सच-सच कह दिया। तब महाराज ने बाजार से लड्डू मंगाकर बालकों को दिये। और कहा—'तुम्हारा अध्यापक शायद तुम्हें लड्डू न दे, इसलिये मैं ही दिये देता हूं।'

आर्यसमाज का सदस्य बनाने पर प्रसन्नता

महाराज के जेहलम त्याग से एक दिन पूर्व लाला गंगाराम धम ने एक सज्जन से आर्यसमाज की सभासदी का आवेदन-पत्र लिखाया। वह उनकी जेब में पड़ा था। अगले दिन जब वह और अन्य लोग महाराज को स्टेशन पर पहुंचाने गये,तो उन्होंने वह पत्र आर्यसमाज के मन्त्री को दिया। महाराज ने पूछा कि कैसा कागज है? तो उन्होंने बतलाया कि एक सज्जन का सभासदी के लिए प्रार्थना-पत्र है। महाराज गाड़ी में बैठे थे, परन्तु इन शब्दों को सुनकर इतने हर्षित हुए कि गाड़ी से बाहर आ गये। और प्रेम से लाला गंगाराम को गले लगा लिया।

मनुष्य की मनुष्यता

एक दिन दो उच्च राज-कर्मचारी स्वामीजी से मिले। और कहने लगे—'महाराज! खण्डन में क्या धरा है? इससे लोग उत्तेजित होते हैं। हम तो उसी कर्म को अच्छा समझते हैं, जिस में अपना भला हो। परहित-चिन्तन और परोपकार तो ढकोसला है।' महाराज ने उत्तर दिया—'अपनी भलाई का काम तो गधे और अन्य पशु-पक्षी भी करते हैं। मनुष्य की मनुष्यता तो इसी में है कि दूसरों का उपकार करे।'

अखण्ड ब्रह्मचर्य

गुजरांवाला में एक दिन महाराज ने अपने व्याख्यान में कहा—'सरदार हरीसिंह नलवा बड़ा शूरवीर था। उसका कारण संभवतः यही था कि वह २५-२६ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहा था।' उन्होंने यह भी कहा—'मेरी आयु इस समय ५१ वर्ष की है, मेरा ब्रह्मचर्य अखण्डित है। मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूं कि जिस किसी को अपने बल का घमण्ड हो, मैं उसका हाथ पकड़ लेता हूं, वह छुड़ा लेवे। अथवा मैं हाथ खड़ा करता हूं उसे झुका देवे।' उस समय लगभग ५०० की उपस्थिति होगी, जिसमें कई पहलवान भी थे। परन्तु किसी को महाराज के आह्वान को स्वीकार करने का साहस न हुआ।

नींद क्यों आती है?

एक दिन किसी ने महाराज से शंका की कि—'क्या कारण है कि लोग नाच-रंग तो सारी रात जागकर देखते रहते हैं, परन्तु धर्मोपदेश में सो जाते हैं?' महाराज ने कहा—'उसमें उत्तेजना होती है, अतः नींद नहीं आती। इसमें शान्ति होती है, फिर सोयें न तो क्या करें?'

भारतवासी लाभ में रहेंगे

एक दिन महाराज ने व्याख्यान में कहा था—'लोग कहते हैं कि अंग्रेज लोग धनी और भारतवासी निर्धन होते जाते हैं। इसकी चिन्ता न करनी चाहिये। क्योंकि अंग्रेज जितने अधिक धनी होते जायेंगे, उतने ही ऐश्वर्य में पड़ते जायेंगे। इससे वह आलसी होंगे, और आलस्य से निर्बल। देशी लोग जितने निर्धन होंगे, उतने ही परिश्रमी बनेंगे, और परिश्रम से बलवान् बनेंगे। इससे देशी लोग लाभ में रहेंगे।'

❀❀

संसार को जीत लेते

पण्डित पोहलोराम स्वामीजी के एक अनन्य भक्त थे। एक दिन अमृतसर में उन्होंने नैराश्य-भाव में स्वामीजी से कहा—'आर्य-समाजियों की संख्या बहुत थोड़ी है। इतने थोड़े-से मनुष्यों से क्या बनेगा?' स्वामीजी ने उन्हें ढाढस बंधाते हुये कहा—'आप तो बहुत हैं, सहस्रों को अपना साथी बना सकते हैं। मैंने जब कार्य आरम्भ किया था, तो मैं अकेला ही था। आज परमेश्वर की कृपा से, मेरे सहस्रों साथी हैं। यदि बालशास्त्री और विशुद्धानन्द मेरा साथ देते, तो हम तीनों संसार को जीत लेते। परन्तु शोक है कि वह मेरे भावों को जाने बिना ही मुझ से विरोध करने लगे।'

❀❀

अन्तरंग सभा में

रुड़की में एक दिन महाराज ने आर्यसमाज के सभासदों को यह उपदेश दिया—'अन्तरङ्ग सभा में बैठकर हठ और दुराग्रह नहीं करना चाहिये। बहुमतानुसार जो निश्चय हो, उसके अनुसार चलना चाहिये, और सभा की बातों को गुप्त रखना चाहिये।'

❀❀

ज्योतिषी को उत्तर

मेरठ के पण्डित गौरीशङ्कर ज्योतिषी एक दिन महाराज की सेवा में आये, और कुछ वार्तालाप करना चाहा। महाराज ने उनके आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा—'मैं ज्योतिषी हूं, कुछ प्राप्ति की लालसा से आया हूं।' महाराज ने उनसे कहा—'यदि आपके ज्योतिष ने आपको यह बतलाया है कि आपको प्राप्ति होगी, तो यह मिथ्या है, क्योंकि मैं आपको कुछ नहीं दूंगा। और यदि यह बतलाया है कि प्राप्ति न होगी, तो आपने व्यर्थ परिश्रम किया।'

भारी मानसिक कष्ट

मेरठ में एक दिन कुछ तिलकधारी ब्राह्मण महाराज के पास बैठे थे। तभी एक सज्जन आये, और नमस्ते कहकर कुशल पूछा। महाराज ने कहा—'हमें कुशल कहां?' उक्त सज्जन ने पूछा कि क्या कोई मानस खेद है? महाराज ने उत्तर दिया—'इससे अधिक खेद क्या होगा कि ये ब्राह्मण अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करते। आडम्बर से अधिक प्यार करते हैं, धर्म के प्रचार का इन्हें ध्यान तक नहीं।'

दयानन्द पुराण

महाराज पुष्कर में विराजमान थे। एक दिन बूंदी के राज-पण्डित आये, और मूर्तिपूजा सिद्ध करने के लिये एक श्लोक पढ़ा। महाराज ने तत्क्षण एक श्लोक रचकर मूर्तिपूजा का खण्डन किया। पण्डितजी ने पूछा कि यह किस ग्रन्थ का श्लोक है? तो कहा कि पहले आप बताइए कि आपका श्लोक किस ग्रन्थ का है? पण्डितजी ने कहा—'पद्मपुराण का'। महाराज ने कहा—'हमारा श्लोक दयानन्द

पुराण का है।' पण्डित कहने लगा कि वह कैसा पुराण है? महाराज ने उत्तर में कहा—'तुम्हारे पुराणकर्त्ता तो अब जीवित नहीं हैं, जबकि दयानन्दपुराण का कर्त्ता तुम्हारे सम्मुख है। और हमारे श्लोक के अनुकूल वेदादिशास्त्रों के अनेक प्रमाण हैं।' यह सुनकर पण्डित चुप हो गया।

❁❁

गौ और विधवा की हाय

हरिद्वार के कुम्भ पर महाराज धर्म-प्रचार कर रहे थे। लोगों की और देश की अवस्था पर एक दिन विचार करते-करते महाराज विह्वल हो उठे। वह बैठे हुये थे कि सहसा लेट गये। लोगों को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर पश्चात् महाराज उठे, और दीर्घ श्वास खींचकर कहा—'विधवाओं और गौओं की हाय से देश नष्ट हो गया।'

❁❁

पुरुषार्थ करना चाहिये

एक और दिन महाराज ने देखा कि बहुत-से साधु एक ओर को जा रहे हैं। महाराज ने पूछा कि क्या बात है? उत्तर मिला कि एक प्रसिद्ध उदासी साधु आये हैं, उनको देखने जा रहे हैं। महाराज ने कहा—'देखो भारतवर्ष में सनातन वेद-विरुद्ध कितने मत-मतान्तर चल गये हैं? कोई उदासी है तो कोई निर्मला, कोई वैरागी है तो कोई अन्य सम्प्रदाय का। मूल-धर्म सबने छोड़ दिया है।' एक साथी ने कहा—'एक धर्म होना तो कठिन है।' महाराज ने कहा—'पुरुषार्थ करना चाहिये। इससे बहुत कुछ मेल और एकता हो सकती है।'

❁❁

आर्य-भाषा

एक दिन एक सज्जन ने महाराज से कहा—'यदि आप अपने ग्रन्थों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनुवाद करा दें तो जो लोग आर्य-भाषा नहीं जानते, उन्हें वैदिक-धर्म के जानने में बहुत सुविधा हो।' महाराज ने कहा—'भारतवासियों को आर्य-भाषा को सीख लेना कुछ कठिन नहीं है। जो इस देश में जन्म लेकर अपनी भाषा को सीखने का परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है?'

❀❀

मिथ्या-ही-मिथ्या

कुम्भ पर महाराज से मिलने के लिये एक वेदान्ती साधु आया। वह बहुत कम पढ़ा हुआ था। महाराज ने उसके साथ उसी ढङ्ग से बात की। जो बातचीत हुई, वह इस प्रकार है—

स्वामीजी—पहले आप बतलावें कि वेदान्त से आपका क्या अभिप्राय है?

साधु—यही कि जगत मिथ्या है, और ब्रह्म सत्य है।

स्वामीजी—जगत् से क्या अभिप्राय है? उसके भीतर क्या-क्या पदार्थ हैं?

साधु—परमाणु से लेकर सूर्य पर्यन्त जो कुछ है, उसे जगत् कहते हैं। और यह सब मिथ्या अर्थात् झूठ है।

स्वामीजी—आपका शरीर, बोलना-चालना, उपदेश, गुरु और पुस्तक भी उसके भीतर हैं या नहीं?

साधु—हां, यह सब उसी के भीतर हैं?

स्वामीजी—और आपका मत भी उसी के भीतर है?

साधु—हां, वह भी जगत् के ही भीतर है।

स्वामीजी—जब आप स्वयं कहते हैं कि—हम, हमारा गुरु, हमारा मत, पुस्तक, बोलना, उपदेश यह सब मिथ्या-ही-मिथ्या हैं, तो हम आपसे क्या कहें ? जब स्वयं वादी के कथन से ही उसका दावा खारिज हो, तो साक्षी आदि की आवश्यकता ही क्या है ?

चाहे दूसरा जन्म धारण करना पड़े

एक दिन लाहौर में स्वामीजी ने कहा—'वैदिक-धर्म-प्रचार का कार्य बहुत बड़ा है। हम जानते हैं कि वह हमारे इस सारे जीवन में पूर्ण न हो सकेगा। परन्तु चाहे दूसरा जन्म धारण करना पड़े, मैं इस महत् कार्य को अवश्य पूर्ण करूंगा।'

ईंटवर्षा के स्थान पर पुष्पवर्षा होगी

अमृतसर में महाराज पधारे, तो सरदार भगवान्सिंह जी के मकान पर शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। महाराज नियत समय पर वहां पहुंच गये। कोई छः-सात हजार मनुष्य एकत्र थे। थोड़ी देर में पण्डित-दल जय-जय नाद गुंजाता आ पहुंचा। सात-आठ पण्डित अकड़कर स्वामीजी के सम्मुख बैठ गये। इतने ही में उनके चेलों ने चारों ओर से ईंट-पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिये। सभा-स्थान को धूलि वर्षा से धुआंधार बना दिया। जब पुलिस प्रबन्ध के लिये आगे बढ़ी, तो वह पण्डित और उनके चेले चम्पत हो गये। उस समय भगवान् दयानन्द के भक्त चाहते थे कि उद्दण्डों को कुछ शिक्षा दें। परन्तु स्वामीजी ने उनसे कहा—'मद-मदिरा से उन्मत्त जनों पर कोप नहीं करना चाहिये, हमारा काम एक वैद्य का है। उन्मत्त मनुष्य को वैद्य औषधि देता है, न कि उसकी लीला पर उसे मारपीट करता है। निश्चय जानिये, आज जो लोग मुझ पर ईंट-पत्थर और धूल बरसाते

हैं, वही लोग कभी पुष्प-वर्षा करने लग जायेंगे।'

जब महाराज अपने डेरे पर पधारे, तो एक भक्त ने कहा—'महाराज ! आज तो दुष्ट लोगों ने आप पर बहुत राख धूल फेंकी, और आपका घोर अपमान किया।' महाराज ने कहा—'परोपकार और परहित करते समय अपना मानापमान और बुराई-निन्दा का परित्याग करना ही पड़ता है। इसके बिना सुधार नहीं हो सकता। मैंने आर्यसमाज का उद्यान लगाया है। इससे मेरी अवस्था एक माली की हैं। पौधों में खाद डालते समय राख और मिट्टी माली के सिर पर भी पड़ जाया करती है। मुझ पर राख धूल चाहे कितनी पड़े, मुझे इसका कुछ ध्यान नहीं। किन्तु वाटिका हरी-भरी बनी रहे, और निर्विघ्न फले फूले।'

❀❀

मेरी आयु १०० वर्ष से अधिक होती !

एक दिन स्वामीजी के श्रद्धालु भक्त रामलाल ने मुरादाबाद में महाराज से पूछा—'आपके स्वास्थ्य पर क्या कोई आघात पहुंचा है?' महाराज ने कहा—'मुझे कई बार विष दिया गया है। यद्यपि मैंने उसे वमन और वस्ति-कर्म आदि से निकाल दिया, फिर भी उसका कुछ-न-कुछ अंश रक्त में रह गया। इसीसे मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया। अन्यथा मेरी आयु १०० वर्ष से अधिक होती। परन्तु अब इस शरीर के अधिक दिन रहने की आशा नहीं है।'

❀❀

माता-पिता की सेवा नहीं की

जब उक्त बात हो चुकी, तो रामलाल ने पूछा—'फिर आप योग्य-शिष्य क्यों नहीं बनाते ?' महाराज ने उत्तर दिया—'मैंने पहले पाठशालाएं स्थापित कीं, ताकि जो लोग उनसे विद्वान् निकलें, वह

वैदिक धर्म का प्रचार करें। परन्तु कोई अच्छा विद्यार्थी नहीं मिला। योग्य शिष्य न मिलने का यह भी कारण है कि मैंने अपने माता-पिता की सेवा नहीं की, फिर मुझे योग्य शिष्य कैसे मिलें? परन्तु आर्य-समाज में ऐसे लोग उत्पन्न होंगे, जो मेरे उद्देश्य को पूर्ण करेंगे।'

सिंह-गर्जना

बरेली में जब खण्डन का खड्ग चला, तो और तो और कमिश्नर-कलक्टर इत्यादि भी रुष्ट हो गये। उन्होंने ला॰ लक्ष्मीनारायण को, जिनके पास स्वामीजी ठहरे हुए थे। कहा कि स्वामीजी को रोको। परन्तु स्वामीजी तक यह बात पहुंचाये कौन? निदान कांपते-डरते यह बात महाराज के कानोंतक पहुंचाई गई। उस दिन के व्याख्यान में भी सब सरकारी हाकिम आये हुए थे। महाराज ने सत्य का महत्त्व वर्णन करते हुए कहा कि लोग कहते हैं—'सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रुद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे चक्रवर्ती राजा क्यों न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे'। इतना कहकर महाराज ने एक उपनिषद्वाक्य पढ़ा, जिसमें कहा गया था—'आत्मा को कोई हथियार छेदन नहीं कर सकता, न उसे आग ही जला सकती है।' और फिर गरजकर बोले—'यह शरीर तो अनित्य है। इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट कर दे।' और फिर चारों ओर अपने नेत्रों की ज्योति डालकर सिंहनाद करते हुए कहा—'परन्तु मुझे वह शूरवीर दिखलाओ, जो यह कहता हो कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है। जबतक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता, तबतक मैं यह सोचने के लिये भी तैयार नहीं हूं कि मैं सत्य को दबाऊंगा या नहीं?

समय का मूल्य जानो

महाराज के वेद-भाष्य में कुछ कार्य करनेवाले कर्मचारी थे। एक दिन वह समय से आधा घण्टा पीछे काम पर आये। महाराज ने उन्हें उपदेश दिया—'हमारे देश के निवासी समय का मूल्य नहीं जानते, उसे व्यर्थ खोते हैं। यही उनकी दुरवस्था का कारण है। समय का मूल्य उस समय ज्ञात होता है, जब एक मरणासन्न रोगी को देखकर वैद्य कहता है कि यदि मुझे पांच मिनट पहले बुलाते, तो यह न मरता। अब सहस्रों रुपये भी व्यय करके नहीं बच सकता।'

गो-वध बन्द हो सकता है

एक दिन फर्रुखाबाद में व्याख्यान देते हुए महाराज ने गो-रक्षा पर विचार प्रकट करते हुए कहा—'प्रतिदिन सहस्रों गौएं देश में मारी जाती हैं, जिससे देश की अत्यन्त हानि हो रही है। इसी कारण यह देश दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है। कितने शोक की बात है कि इतनी भारी क्षति को देखते हुए भी हमारे देश के शासक इस ओर ध्यान नहीं देते। परन्तु इसमें केवल शासकों का ही अपराध नहीं है, हमारा भी अपराध है। हम में एकता नहीं है, इसी कारण यह क्षति हो रही है। यदि सब मिलकर सरकार से निवेदन करें, तो क्या गो-वध बन्द नहीं हो सकता ?'

देश की निर्धनता पर आंसू

१. फर्रुखाबाद में महाराज गंगा के तट पर विराजमान थे। और देश की बिगड़ी और दीन-हीन दशा पर विचार कर रहे थे। इतने में एक ग्रामवासिनी बुढ़िया अपने युवा पुत्र के शव को गंगा तट पर लाई। वह इतनी दरिद्र थी कि मृतक के दाह के लिए ईंधन तक भी

उपस्थित न कर सकी, और उसने शव को दाह किये विना ही गंगा में वहा दिया। महाराज को जब यह हाल मालूम हुआ, तो वह दयार्द्र स्वर में बोले—'हाय, हमारा देश इतना निर्धन हो गया है कि मृतक शरीरों को काष्ठ तक भी नहीं मिल सकता।' यह कहकर उनके नेत्रों में अश्रु भर आये, और देर तक यही अवस्था रही।

२. लखनऊ में महाराज व्याख्यान देकर लौट रहे थे। कुछ आर्य-सज्जन भी उनके साथ थे। मार्ग में एक अत्यन्त जर्जरित बुढ़िया उन्हें मिली। उसने कातर-स्वर में महाराज से कहा—'बाबा जी! मैं भूखी हूं, आज का अन्न दिला दें।' महाराज ने उसे कुछ पैसे दिला दिये। उसे देखकर महाराज की आंखों में आंसू डबडबा आये। और अत्यन्त करुणाभरे शब्दों में उन्होंने कहा—'इस स्वर्णमयी भूमि की कितनी हीन-दशा हो गई है कि आज इस क्षुधार्त बुढ़िया को यह भी विवेक नहीं रहा कि वह जिससे अन्न मांगती है, वह स्वयं मांगकर खाता है।'

आनन्द कहां?

सेठ निर्भयराम एक दिन फर्रुखाबाद में महाराज के पास आये। महाराज ने पूछा—'सेठजी! आनन्दित तो हो?' सेठजी ने उत्तर दिया—'हां महाराज! आपकी दया से पुत्र-पौत्र, धन-धान्य सब कुछ है।' महाराज ने कहा—'धर्म-कर्म और आत्मा-परमात्मा से भिन्न अन्य वस्तुओं में आनन्द समझना अविद्या का लक्षण है।'

मेरा काम मन्दिरों को तोड़ना नहीं

जिन दिनों फर्रुखाबाद के बाजार को ठीक किया जा रहा था, तब महाराज वहीं थे। उस बाजार के बीच में एक मढ़िया था,

जहां लोग धूप-दीप दिया करते थे। बाबू मदनमोहनलाल ने स्वामी जी से कहा—'स्काट साहब आपको बहुत मानते हैं। उनसे कहकर मढ़िया को हटवा दीजिये।' स्वामीजी ने उत्तर दिया—'मेरा काम लोगों के मनो-मन्दिरों से मूर्तियां निकलवाना है, ईंट पत्थरों को तोड़ना नहीं है।'

ईश्वर प्रत्यक्ष कैसे होता है ?

दानापुर बिहार में एक भक्त ने पूछा—'महाराज ! जब ईश्वर का नाम है,तो उसका रूप भी होगा। उसके रूप को किस प्रकार देखा जा सकता है ?' महाराज ने उत्तर दिया—'ईश्वर सर्वव्यापक है और अरूप है, उसका साक्षात् ध्यान से होता है। जिस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म कण आकाश में उड़ते-फिरते हैं और दिखाई नहीं देते, परन्तु जब किसी कमरे में सूर्य की किरणें झरोखे में होकर आती हैं, तो वह कण दिखाई देने लगते हैं, इसी प्रकार ईश्वर भी हर जगह है, परन्तु वह ध्यान द्वारा प्रत्यक्ष होता है।

दलितों की चिंता से विकल

एक रात्रि को महाराज सहसा उठकर इधर-उधर टहलने लगे। उनके पांव की आहट सुनकर एक कर्मचारी की आंखें खुल गईं। उसने पूछा—'महाराज ! क्या कोई कष्ट है?' उन्होंने एक लम्बी सांस खींची, और बोले—'ईसाई लोग दलितों को ईसाई बनाने का भरसक यत्न कर रहे हैं, और रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। इधर हिन्दुओं के धर्म-नेता हैं, जो कुम्भकर्ण की नींद सो रहे हैं। यही चिन्ता मुझे विकल कर रही है।' यह घटना दानापुर की है।'

मन की एकाग्रता का उपाय

बम्बई में महाराज बालकेश्वर में ठहरे हुए थे। गोरक्षा के लिए लोगों से हस्ताक्षर करा रहे थे। इस बार सब-के-सब हिन्दू उनके साथ मिलकर काम कर रहे थे। उनके निवास-स्थान पर भक्तजन पहुंचकर अपने संशय निवृत्त करते थे। एक दिन एक सज्जन ने पूछा—'महाराज ! मन स्थिर नहीं होता।' महाराज ने कहा—'उसे एक जगह ठहरा लो।' बा० जनकधारी लाल ने कहा—'नहीं ठहरता। क्या इसके लिये किसी वस्तु का ध्यान करने की आवश्यकता है ?' महाराज ने कहा—'नहीं, और यदि तुमसे नहीं हो सकता, तो अपने भीतर किसी तिल या सूई की नोक के बराबर वस्तु की कल्पना कर लो, और उसमें ध्यान जमाओ। फिर उसके टुकड़े करके एक टुकड़े पर ध्यान जमाओ। ऐसे ही टुकड़े करते चले जाओ। यहां तक कि अन्त में अत्यन्त सूक्ष्म टुकड़ा रह जाय। फिर उसे भी उड़ा दो। तब तुम्हारी धारणा हो जायेगी।'

❀❀

भक्त को क्या करना चाहिए ?

'गायत्री-मन्त्र का जाप प्रतिदिन किया करो।' स्वामीजी ने भक्त पोहलोराम को अधिकारी समझकर यह उपदेश दिया। और साथ ही यह भी कहा—'रात्रि को शय्या पर जाकर प्रणव का जाप किया करो, और जाप करते-करते ही सो जाओ।' स्वामीजी ने उनको प्राणायाम की विधि भी बतलाई। यह बात अमृतसर की है।

❀❀

बालक के लिए उपदेश

एक दिन बालकेश्वर (बम्बई) में महाराज के पास एक सेठ आये। उनका दस वर्षीय पुत्र भी उनके साथ था। उसे महाराज ने

यह उपदेश दिया—'तुम नित्य सवेरे उठकर और मुंह-हाथ धोकर अपने माता-पिता को नमस्ते किया करो। और पाठशाला जाते हुए अपनी पुस्तकें स्वयं ले जाया करो, नौकर से मत लिवा जाया करो। यदि मार्ग में कोई स्त्री तुम्हें मिल जाये, तो उसकी ओर दृष्टि जमाकर मत देखो। अपनी दृष्टि नीची करलो, नहीं तो उसकी आकृति तुम्हारे मन में घुसकर एक प्रकार की उष्णता उत्पन्न करेगी। तुम्हें धातु-क्षीणता का रोग हो जायगा, जिससे तुम्हारा बहुत अनिष्ट होगा।'

अमूर्त्त का ध्यान कैसे ?

उदयपुर में एक दिन महाराज प्रातःकाल जब ध्यान से उठे, तो महाराणा सज्जनसिंह ने, जो प्रतिदिन महाराज के दर्शन करने आते थे, यह पूछा—'जब आप किसी मूर्तिमान् उपास्य देव को मानते नहीं, तो ध्यान किसका करें?' महाराज ने कहा—किसी मूर्तिमान् पदार्थ को मानकर ध्यान नहीं करना चाहिए। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्व-सृष्टि का कर्ता, सृष्टि को एक क्रम में चलानेवाला, नेता, पालनकर्त्ता, और ऐसे ही परमेश्वर के गुणों का चिन्तन, उसकी महिमा का वर्णन, संसार के उपकार में चित्तवृत्ति लगाने की प्रार्थना करना, यही ध्यान है।'

एकलिंग-मन्दिर के महन्त बन जायें

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह जी ने एक दिन एकान्त में अत्यन्त विनम्र भाव से निवेदन किया—'राजनीति के सिद्धांत के अनुसार आपको मूर्तिपूजा का खण्डन न करना चाहिए। यह तो आप जानते ही हैं कि यह राज्य एकलिंग महादेव के अधीन है। आप

एकलिंग के मन्दिर के महन्त वन जायें। कई लाख रुपये पर आपका अधिकार हो जायगा। और एक अर्थ में यह राज्य भी आपके आधीन रहेगा'। महाराज ने पूरी शांति तथा गम्भीरता से इसे सुना। परन्तु उन्हें आवेश-सा आ गया, और कड़ककर बोले—'आप लोभ देकर मुझसे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की आज्ञा-भङ्ग कराना चाहते हैं। यह छोटा-सा राज्य और उसके मन्दिर, जिससे मैं एक दौड़ में बाहर जा सकता हूं, मुझे कभी भी वेद और ईश्वर-आज्ञा भङ्ग कराने पर उतारू नहीं कर सकते। मैं कदापि सत्य को छोड़ या छिपा नहीं सकता। आगे से आप विचार कर बात करें। महाराणा यह सुनकर चकित रह गये। और कहने लगे—'मैं तो केवल देखना चाहता था कि आप कितने दृढ़ हैं?'

अधर्म का खाने से भीख मांगना अच्छा है

महाराणा उदयपुर को मनुस्मृति पढ़ाते हुए महाराज ने कहा—'स्वामीजी की वह आज्ञा माननी चाहिये जो धर्मानुकूल हो। अधर्म के अनुकूल आज्ञा कभी नहीं माननी चाहिएे।' इस पर ठा० मनोहरसिंह जागीरदार सरदारगढ़ ने कहा—'महाराणा हमारे स्वामी हैं, यदि हम इनकी धर्म के प्रतिकूल आज्ञा न मानें, तो यह हमारी जागीर छीन लें।' महाराज ने उत्तर में कहा—'कुछ चिंता नहीं, यदि धर्म के कारण धन या जागीर चली जाय। अधर्म करने और अधर्म का खाने से तो भीख मांगकर खाना अच्छा है।'

भारत का पूर्ण हित कब होगा?

एक दिन उदयपुर में पण्डया मोहनलाल ने महाराज से प्रश्न किया--'भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति कब होगी?'

महाराज ने कहा—'एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य

वनाए विना ऐसा होना दुष्कर है। इसीलिए मैं चाहता हूं कि देश के नृपगण अपने-अपने राज्य में धर्म भाषा और भाव में एकता उत्पन्न करें।' पं मोहनलाल ने कहा—'जब आपका उद्देश्य एकता उत्पन्न करने का है, तो आप मत-मतान्तरों का खण्डन क्यों करते हैं? इससे तो अनैक्य वढ़ता है'। महाराज ने उत्तर दिया—'धर्माचार्यों और नेताओं की असावधानी तथा प्रमाद से जाति के आचार-विचार, रहन-सहन दूषित हो जाते हैं, और भाव एक नहीं रहते। आर्य-जाति की यही दशा हुई, और यदि इसे सम्भाला न गया, तो यह नष्ट हो जायेगी। धर्माचार्यों के प्रमाद के कारण करोड़ों मुसलमान हो गए, और अब ईसाई हो रहे हैं? यदि इस जाति को कड़ुए उपदेशों के कोड़े से न जगाया गया, और कुरीतियों को नष्ट न किया गया, तो इसकी मृत्यु में सन्देह ही क्या है? मैं यह काम किसी स्वार्थ से तो कर ही नहीं रहा हूं। इसके कारण तो मैं अनेकों कष्ट सहता हूं, गालियां और ईंट-पत्थर खाता हूं। विष तक भी मुझे दिया जा चुका है, परन्तु जाति और धर्म के लिए मैं सब कुछ सहन करता हूं।'

❀❀

एक लिपि और एक भाषा

कितनी दिव्य दृष्टि थी महाराज की। राष्ट्र-निर्माण के लिए वह पहले ही जान गये थे कि एक भाषा और एक लिपि अत्यन्त आवश्यक है। और वह केवल हिन्दी और देवनागरी हो सकती है। इसीलिए उन्होंने अपने सारे ग्रन्थ हिन्दी ही में लिखे। सन् १८८२ में सरकार ने एक कमीशन नियत किया था कि सरकारी दफ्तरों में कौन लिपि रखी जाय? स्वामीजी ने भी इसके लिए यत्न किया था। महाराज ने बा० दुर्गाप्रसाद रईस फर्रुखाबाद को उदयपुर से इस अभिप्राय का एक पत्र लिखा था कि—'आजकल सर्वत्र अपनी आर्य भाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ (भाषा के प्रचारार्थ जो

कमीशन (नियत हुआ है, उसमें) पञ्जाव आदि अहातों से मैमोरियल भेजे गये हैं। परन्तु मध्यप्रान्त, फर्रुखावाद, कानपुर, बनारस आदि स्थानों से नहीं भेजे गये। नैनीताल की सभा की ओर से इसी विषय में पत्र आया था कि आप इस विषय में प्रयत्न करें। अब कहिये हम अकेले सर्वत्र कैसे घूम सकते हैं? जो यही एक काम हो, तो कुछ चिन्ता नहीं। यह काम एक के करने का नहीं। और अवसर चूके यह अवसर हाथ आना दुर्लभ है। यदि यह कार्य सिद्ध हुआ, तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नींव पड़ जायेगी।'

चौके-चूल्हे का पाखण्ड

शाहपुर में एक दिन एक संन्यासी, जो स्वामीजी के पास अध्ययन करता था, चौके के प्रश्न पर उनके रसोइये से विगड़ बैठा। महाराज ने उसकी भर्त्सना की—'संन्यासी होकर भी चौके-चूल्हे के पाखण्ड से नहीं छूटा। तुम्हें तो चारों वर्णों के परस्पर भेद-भाव को मिटाकर सार्वजनिक बन्धुत्व स्थापित करना चाहिये। परन्तु तुम स्वयं कच्ची-पक्की, निखरी-सखरी रसोई के वखेड़े में पड़े हो।'

तब जिन्दा न छोड़ते

जोधपुर में सत्य-प्रचार हो रहा था। महाराज निर्भीक होकर सबके मुंह पर सत्य-सत्य सुनाते थे। फ़ैजुल्लाखां और नन्हीं जान दो ही की उन दिनों जोधपुर में तूती बोलती थी। इस्लाम का खण्डन सुनकर एक दिन फैजुल्लाखां ने महाराज से कहा—'यदि मुसलमानों का राज्य होता, तो लोग आपको जीवित न छोड़ते। और उस समय आप ऐसे भाषण भी न कर सकते।' महाराज ने कहा—'मैं भी उस समय ऐसा ही कार्य करता। दो राजपूतों की पीठ थपेड़ देता, और वे आपकी अच्छी तरह खबर ले लेते।'

यह पतिव्रत धर्म की सत्ता है

जोधपुर में महाराज ने कहा—'हिन्दू राजाओं की दुराचार के कारण बहुत बुरी दशा है। उनके राज्य कभी के नष्ट हो गये होते। वह यदि अब तक मौजूद हैं, तो यह उनकी रानियों के पतिव्रत धर्म की सत्ता है। अन्यथा राजाओं के कुकर्म तो ऐसे हैं कि उनसे उनका बेड़ा कभी का डूब जाता।'

कोई नया मत नहीं

महाराज अपना कोई नया मत नहीं चलाना चाहते थे, अपितु वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त के माने हुए सिद्धान्तों ही को वह मानते थे। और उन्हीं पर चलने का सबको उपदेश देते थे। 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में लिखते हैं—'मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना, और जो असत्य है, उसको छोड़ना-छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।'

आपस की फूट

आर्य-जाति की फूट को देखकर महाराज कितने हृदयस्पर्शी शब्दों में पुकार उठे हैं। ध्यान से पढ़िये—

'आपस की फूट से कौरव-पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो गया। परन्तु अब तक भी वह रोग पीछे लगा है, न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा या आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख-सागर में डुबा मारेगा। उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र-हत्यारे स्वदेशविनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक

भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राज-रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।

मनुष्यधर्म क्या है?

महाराज ने 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में मनुष्यधर्म का वर्णन कितने सुन्दर शब्दों में किया है, देखिये—

"मनुष्य उसी को कहना, जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे, और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्व-सामर्थ्य से धर्मात्माओं को, चाहे वे महा-अनाथ निर्बल और गुणरहित भी क्यों न हों, उनकी रक्षा उन्नति प्रियाचरण; और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो, तथापि उसका नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि, और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जायं, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से कभी पृथक् न होवे।"

अन्तिम बातें

अब ऐसी प्यारी बातें करनेवाले की अन्तिम बातें भी सुन लो—

जोधपुर की कठोर भूमि में ब्रह्महत्या होने लगी है। भारत के हृदय को चीरकर फेंक दिया जाने लगा है। धर्म के फूलते-फलते उद्यान को उजाड़ दिया जाने लगा है। कहां से यह धर्म जाति तथा देश को डसनेवाली नागिन नन्हीं जान पैदा हो गई थी? कहां से वह राक्षसी स्वभाववाला डाक्टर अली मरदान वहां आ गया था?

इन पिशाचों ने अपनी पिशाचलीला खेल डाली, महाराज को विष दे दिया गया। अली मरदान चिकित्सा के लिए बुलाये गये, तो उन्होंने ऐसी ओषधि दे दी, जिससे एक ही दिन में ४० दस्त आगये। महाराज की एक-एक नस और नाड़ी में पीड़ा तथा शूल छा गया। १५ दिन महाराज इसी प्रकार तड़फते रहे, परन्तु मुख से हाय तक नहीं की। किसी की शिकायत भी नहीं की। १५ दिन तक जोधपुर से बाहर किसी को सूचना भी नहीं दी। एक समाचारपत्र में महाराज के इस भयङ्कर रोग की खबर निकल गई। अजमेर से लाला जेठमल जोधपुर पहुंचे, और महाराज की दशा को देखकर शोक-निमग्न हो गये। उन्होंने महाराज से कहा—"भगवन् ! यह क्या हुआ ? और अधिक शोक यह कि आपने किसी को सूचित भी नहीं किया।" महाराज ने कहा—"रोग की दशा को क्या लिखते, यह तो शरीर का धर्म ही है। उसमें सुख-दुःख होते ही रहते हैं। मैं सूचना देता तो आप लोगों को भी कष्ट होता।" लाला जेठमल ने सब समाजों को तार दे दिये, सारे देश में हलचल मच गई।

अली मरदान के इलाज से रोग बढ़ता ही गया। तब आबू पर्वत पर स्वामीजी को ले जाया गया। रास्ते में पञ्जाबी डाक्टर लछमनदास मिल गए। वह स्वामीजी को अत्यन्त रोगी देखकर आबू को चल पड़े, और अपनी नौकरी का भी विचार न किया। डा० लछमनदास के इलाज से आराम आने लगा। उधर डा० लछमनदास को पूछा जाने लगा कि तुम ड्यूटी पर क्यों हाजिर नहीं हुए ? उन्होंने उत्तर में त्यागपत्र लिख दिया। महाराज को जब ज्ञात हुआ, तो त्यागपत्र लेकर फाड़ डाला। और कहा कि—"आप नौकरी पर जायं।" मृत्युशय्या पर लेटे हुए भी दयानन्द को दूसरों के लाभ का कितना ध्यान है ? डा० लछमनदास चले गये। नया इलाज होने लगा। उससे अवस्था बिगड़ गई। तब स्वामीजी को

अजमेर लाया गया।

एक दिन महाराज अत्यन्त निर्बलता में भी बैठकर और श्वास खींचकर ध्यान करने लगे, फिर लेट गये। किसी ने पूछा आपका चित्त कैसा है? तो कहा—"अच्छा है, एक मास के पश्चात् आज आराम का दिवस है।" एक ने पूछा—"आप कहां हैं?" कहने लगे—"ईश्वरेच्छा में।"

अन्तिम दिन सायङ्काल चार बजे महाराज ने आत्मानन्द को बुलाया। वह सामने आया तो पूछा—'आत्मानन्द क्या चाहते हो?' उन्होंने कहा—"ईश्वर से यही चाहते हैं कि आप अच्छे हो जायं।" महाराज ने कहा—"यह देह है, इसका अच्छा क्या होगा? अच्छा, आनन्द रहो।" फिर बाहर से आये हुए सब आर्यपुरुषों को बुलाया। और उन सबको ऐसी कृपा-दृष्टि से देखा कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। मानों वह सबसे कह रहे हों कि उदास क्यों होते हो, सबको धैर्य्य धारण करना चाहिये।

कितनी वेदना थी उस समय, कौन इसका अनुभव कर सकता है? परन्तु कितने शांत थे महाराज, आप इसका अनुमान भी नहीं कर सकते। मुख-मण्डल पर घबराहट का कोई चिह्न न था। घोर-तम कष्ट को वह पूरी वीरता से सहन कर रहे थे। साढ़े पांच बजे कहने लगे कि हमारे सामने कोई खड़ा न रहे। तब चारों ओर के द्वार और छत के रोशनदान भी खुलवा दिये। अब पंछी उड़ जाने लगा है। तब पूछा—"आज कौनसा पक्ष, क्या तिथि और वार है?" उत्तर मिला—कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष का आदि—अमावस्या और मंगलवार है। यह सुनकर छत और दीवारों की ओर दृष्टि की। फिर कई वेद-मन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वरोपासना की, और भाषा में ईश्वर का गुणकीर्तन किया। और फिर बड़ी

प्रसन्नता तथा हर्षपूर्वक गायत्रीमन्त्र का पाठ करने लगे। और कुछ देर तक समाधिस्थ रहकर आखें खोल दीं, और बोले—

"हे दयामय! हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा! तैंने अच्छी लीला की।" यह कहा, और लम्बा सांस खींचकर एकदम बाहर निकाल दिया।

ले भारत, ले पिशाचवृत्ति! जिस दयानन्द का अन्त करने के लिए कितनी ही बार तूने उसे विष दिया, कितनी ही बार उस पर तलवार चमकाई। ले, आज वह तेरे विष ही के कारण यहां से प्रस्थान कर गया। ओ ब्रह्म-हत्यारे भारत! इसका प्रायश्चित्त भी तू कभी करेगा?

अब यह प्यारी बातें कौन सुनायेगा? यही कुछ बातें, जो वह छोड़ गये हैं, इन्हीं को बार-बार पढ़कर यदि हम महाराज के उद्देश्य को पूर्ण कर सकें, तो शायद इस ब्रह्म-हत्या का कुछ प्रायश्चित्त हो सके॥